संक्षिप्त सत्यार्थप्रकाश

महर्षि दयानन्द सरस्वती (1825 - 1883)

कृष्णचन्द्र गर्ग

संक्षिप्त सत्यार्थप्रकाश
(महर्षि दयानन्द द्वारा रचित सत्यार्थप्रकाश से चयनित अंश)

संक्षेपकर्त्ता -
कृष्णचन्द्र गर्ग, पूर्व गणित प्राध्यापक

Printer – **VASU Enterprises**
Plot No. 136-40/52
Industrial Area, Phase-1
Chandigarh – 160002
Telephone – 0172-4618586

प्रकाशन - नवम्बर 2023

मूल्य - 40 रुए

पुस्तक प्राप्ति स्थान -
पंचकूला, हरियाणा
0172-4010679

भूमिका

'संक्षिप्त सत्यार्थप्रकाश' पुस्तक महर्षि दयानन्द द्वारा रचित सत्यार्थप्रकाश से चयनित अंश लेकर तैयार की गई है। इसमें भाषा, शब्द और वाक्य महर्षि दयानन्द के ही हैं। जो लोग किसी भी कारण से सत्यार्थप्रकाश नहीं पढ़ सकते उनकी सुविधा के लिए यह पुस्तक बनाई गई है। सत्यार्थप्रकाश का जो भाग जन साधारण के लिए अति उपयोगी समझा गया है उसे ही पुस्तक में स्थान दिया गया है। साथ ही सत्यार्थप्रकाश में दिए किसी महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त को छोड़ा नहीं गया है। पुस्तक को पढ़कर बहुत थोड़ी मेहनत से महर्षि दयानन्द के विचारों का ज्ञान पाठकों को हो जायेगा, ऐसी आशा और विश्वास है। पुस्तक तैयार करने का उद्देश्य यह है कि ज्यादा से ज्यादा लोगों तक महर्षि दयानन्द के विचार पहुँचें।

पंचकूला, हरियाणा
नवम्बर 2023

कृष्णचन्द्र गर्ग
kcg831@yahoo.com

संक्षिप्त सत्यार्थप्रकाश

पृष्ठ

प्रथम समुल्लास	–	ईश्वर नाम विषय	5
दूसरा समुल्लास	–	बाल शिक्षा विषय	7
तीसरा समुल्लास	–	पढ़ना, पढ़ाना विषय	14
चौथा समुल्लास	–	विवाह और गृहस्थ विषय	23
पाँचवां समुल्लास	–	वानप्रस्थ, सन्यास विषय	29
छठा समुल्लास	–	राजधर्म विषय	31
सातवां समुल्लास	–	ईश्वर, जीव और वेद विषय	40
आठवां समुल्लास	–	सृष्टि उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय विषय	47
नौवां समुल्लास	–	विद्या-अविद्या, बन्ध-मोक्ष विषय	53
दसवां समुल्लास	–	आचार-अनाचार, भक्ष्य-अभक्ष्य विषय	58
ग्यारहवां समुल्लास	–	आर्यवर्त्तीय मत खण्डन मण्डन विषय	63
बारहवां समुल्लास	–	नास्तिक मत - चारवाक, बौद्ध, जैन विषय	90
तेरहवां समुल्लास	–	इसाई मत विषय	96
चौदहवां समुल्लास	–	मुस्लिम मत समीक्षा	102

★★★★★

प्रथम समुल्लास

ईश्वर नाम विषय

(ओ३म्) यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है क्योंकि इसमें जो अ, उ और म् तीन अक्षर मिलकर एक (ओ३म्) समुदाय हुआ है। इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं, जैसे - अकार से विराट, अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादि। मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है। उसका ऐसा ही वेदादि सत्यशास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है कि प्रकरणानुकूल ये सब नाम परमेश्वर ही के हैं।

जहाँ जिसका प्रकरण है वहाँ उसी का ग्रहण करना योग्य है जैसे किसी ने किसी से कहा कि 'हे भृत्य! त्वं सैन्धवमानय' अर्थात तू सैन्धव को ले आ। तब उसको समय अर्थात प्रकरण का विचार करना अवश्य है, क्योंकि सैन्धव नाम दो पदार्थों का है, एक घोड़े और दूसरा लवण का। जो स्वस्वामी का गमनसमय हो तो घोड़े और भोजन का काल हो तो लवण को ले आना उचित है।

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत्।। २ ।। छान्दोग्य उपनिषत्।
ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानम्।। ३।। माण्डूक्य।
सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।। ४।। कठोपनिषद् वल्ली २। मं0 १५।

(ओ३म्) जिसका नाम है और जो कभी नष्ट नहीं होता उसी की उपासना करनी योग्य है अन्य की नहीं।। 2।।

(ओमित्येत0) सब वेदादि शास्त्रों में परमेश्मवर का प्रधान और निज नाम (ओ३म्) को कहा है, अन्य सब गौणिक नाम हैं।। 3।।

(सर्वेवेदा0) क्योंकि सब वेद, सब धर्मानुष्ठानरूप तपश्चरण जिसका कथन और मान्य करते और जिसकी प्राप्ति की इच्छा करके ब्रह्मचर्य्याश्रम करते हैं उसका नाम 'ओम्' है।। 4 ।।

परमात्मा के बहुत से गुणों के कारण बहुत नाम है।

अग्नि - प्रकाश स्वरूप
मनु - विज्ञान स्वरूप
प्रजापति - सब का पालन करने वाला

इन्द्र – परम ऐश्वर्यवान
ब्रह्म – सर्वत्र व्यापक
ब्रह्मा – सब जगत का बनाने वाला
विष्णु – सर्व व्यापक
रुद्र – दुष्टों को दण्ड देकर रुलाने वाला
शिव – सबका कल्याण करने वाला
अक्षर – नाश न होने वाला

ये नाम अन्य पदार्थों के भी हैं। परन्तु ओम् ईश्वर का ही नाम है। इसलिए ओम् को ईश्वर का निज नाम कहा गया है।

'(ओ३म्) शान्तिः शान्तिः शान्तिः' इसमें तीन बार शान्तिपाठ का यह प्रयोजन है कि त्रिविधताप अर्थात इस संसार में तीन प्रकार के दुःख हैं – एक 'आध्यात्मिक' जो आत्मा शरीर में अविद्या, राग द्वेष, मूर्खता और ज्वर पीड़ादि होते हैं। दूसरा 'आधिभौतिक' जो शत्रु व्याघ्र और सर्पादि से प्राप्त होता है। तीसरा 'आधिदैविक' अर्थात जो अतिवृष्टि अतिशीत अति उष्णता, मन और इन्द्रियों की अशान्ति से होता है। इन तीन प्रकार के क्लेशों से आप हम लोगों को दूर करके कल्याणकारक कार्मों में सदा प्रवृत रखिए, क्योंकि आप ही कल्याणस्वरूप, सब संसार के कल्याणकर्ता और धार्मिक मुमुक्षुओं को कल्याण के दाता हैं। इसलिए आप स्वयं अपनी करुणा से सब जीवों के हृदय में प्रकाशित हूजिए कि जिससे सब जीव धर्म का आचरण और अधर्म को छोड़ के परमानन्द को प्राप्त हों और दुखों से पृथक रहें।

ईश्वर के कुछ और नाम –

परमात्मा – सब जीवों का अन्तर्यामी आत्मा
परमेश्वर – सबसे अधिक सामर्थ्यवान
सविता – सब जगत की उत्पत्ति करने वाला
पिता – सबका रक्षक और पालन करता
माता – सब जीवों का सुख और उन्नति चाहने वाला
आचार्य – सब विद्या प्राप्त कराने वाला
गुरु – वेदों का उपदेश करता
गणपति – सब जीवों का स्वामी
यम – सब प्राणियों को कर्मफल देने वाला

★★★★★

दूसरा समुल्लास

बाल शिक्षा विषय

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद

यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है। वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान होता है। वह कुल धन्य! वह सन्तान बड़ा भाग्यवान! जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुंचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम, उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता। इसलिए (मातृमान्) अर्थात 'प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते यस्य स मातृमान्। धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करे। माता और पिता को अति उचित है कि गर्भाधान के पूर्व, मध्य और पश्चात् मादक द्रव्य, मद्य, दुर्गन्ध, रूक्ष, बुद्धिनाश्क पदार्थों को छोड़ के जो शान्ति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम और सुशीलता से सभ्यता को प्राप्त करे वैसे धृत, दुग्ध, मिष्ट, अन्नपान आदि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करें कि जिससे रजस् वीर्य्य भी दोषों से रहित होकर अत्युत्तम गुणयुक्त हो। जब दोनों के शरीर में आरोग्य, परस्पर प्रसन्नता, किसी प्रकार का शोक न हो। जैसा चरक और सुश्रुत में भोजन छादन का विधान और मनुस्मृति में स्त्री पुरुष की प्रसन्नता की रीति लिखाी है उसी प्रकार करें और वर्तें। गर्भाधन के पश्चात् स्त्री को बहुत सावधानी से भोजन छादन करना चाहिए। बुद्धि, बल, रूप, आरोग्य, पराक्रम, शान्ति और गुणकारक द्रव्यों ही का सेवन स्त्री करती रहै कि जब तक सन्तान का जन्म न हो।

जब जन्म हो तब अच्छे सुगन्धियुक्त जल से बालक को स्नान, नाड़ीछेदन करके सुगंधियुक्त घृतादि का होम और स्त्री के भी स्नान भोजन का यथायोग्य प्रबन्ध करें कि जिससे बालक और स्त्री का शरीर क्रमशः आरोग्य और पुष्ट होता जाय। ऐसा पदार्थ उसकी माता खावे कि जिससे दूध में भी उत्तम गुण प्राप्त हों। गाय या बकरी के दूध में उत्तम औषधि जोकि बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य करने हारी हों उनको शुद्ध जल में भिजा, औटा, छान के दूध के समान जल मिला के बालक को पिलावें। जन्म के पश्चात् बालक और उसकी माता को दूसरे स्थान जहाँ का वायु शुद्ध हो वहां रखें सुगंध तथा

दर्शनीय पदार्थ भी रखें और उस देश में भ्रमण कराना उचित है कि जहां की वायु शुद्ध हो और जहां गाय, बकरी आदि का दूध न मिल सके वहां जैसा उचित समझें वैसा करें।

बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करे, जिससे सन्तान सभ्य हों और किसी अंग से कुचेष्ठा न करने पावें। जब वह कुछ-कुछ बोलने और समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े-छोटे, मान्य, पिता, माता, राजा, विद्वान, आदि से भाषण, उनसे वर्तमान और उनके पास बैठने आदि की भी शिक्षा करें जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न हो के सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करें। जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्संग में रुचि करें वैसा प्रयत्न करते रहैं। व्यर्थ क्रीड़ा, रोदन, हास्य, लड़ाई, हर्ष, शोक, किसी पदार्थ में लोलुपता, ईर्ष्या, द्वेषादि न करें। उपस्थेन्द्रिय के स्पर्श और मर्दन से वीर्य की क्षीणता, नपुंसकता होती और हस्त में दुर्गन्ध भी होता है इससे उसका स्पर्श न करें। सदा सत्यभाषण शौर्य, धैर्य, प्रसन्नवदन आदि गुणों की प्राप्ति जिस प्रकार हो, करावें।

जब पांच-पांच वर्ष के लड़का लड़की हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें। अन्य-देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी। उसके पश्चात् जिनसे अच्छी शिक्षा, विद्या, धर्म, परमेश्वर, माता, पिता, आचार्य, विद्वान, अतिथि, राजा, प्रजा, कुटुम्ब, बन्धु, भगिनी, भृत्य आदि से कैसे-कैसे वर्त्तना इन बातों के मन्त्र, श्लोक, सूत्र, गद्य, पद्य भी अर्थ सहित कण्ठस्थ करावें। जिनसे सन्तान किसी धूर्त के बहकाने में न आवे और जो-जो विद्याधर्मविरुद्ध भ्रान्तिजाल में गिराने वाले व्यवहार हैं उनका भी उपदेश कर दें, जिससे भूत प्रेत आदि मिथ्या बातों का विश्वास न हो।

जब गुरु का प्राणान्त हो तब मृतक शरीर का नाम प्रेत है।

और जब उस शरीर का दाह हो चुका तब उसका नाम भूत होता है अर्थात वह अमुकनामा पुरुष था। जितने उत्पन्न हों, वर्तमान में आ के न रहें वे भूतस्थ होने से उनका नाम भूत है। ऐसा ब्रह्मा से लेके आज पर्यन्त के विद्वानों का सिद्धान्त है परन्तु जिसको शंका, कुसंग, कुसंस्कार होता है उसको भय और शंकारूप भूत, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी आदि अनेक भ्रमजाल दुःखदायक होते हैं।

देखो! जब कोई प्राणी मरता है तब उसका जीव पाप, पुण्य के वश होकर परमेश्वर की व्यवस्था से सुख दुःख के फल भोगने के अर्थ जन्मान्तर

धारण करता है। क्या इस अविनाशी परमेश्वर की व्यवस्था का कोई भी नाश कर सकता है? अज्ञानी लोग वैद्यक शास्त्र वा पदार्थविद्या के पढ़ने, सुनने और विचार से रहित होकर सन्निपातज्वरादि शारीरिक और उन्मादादि मानस रोगों का नाम भूत प्रेतादि धरते हैं। उनका औषधसेवन और पथ्यादि उचित व्यवहार न करके उन धूर्त, पाखण्डी, महामूर्ख, अनाचारी, स्वार्थी, भंगी, चमार, शूद्र, म्लेच्छादि पर भी विश्वासी होकर अनेक प्रकार के ढोंग, छल कपट और उच्छिष्ट भोजन, डोरा, धागा आदि मिथ्या मन्त्र यन्त्र बांधते-बंधवाते फिरते हैं, अपने धन का नाश, सन्तान आदि की दुर्दशा और रोगों को बढ़ा कर दुख देते फिरते हैं। जब आँख के अंधे और गांठ के पूरे उन दुर्बुद्धि पापी स्वार्थियों के पास जाकर पूछते हैं कि महाराज! इस लड़का, लड़की, स्त्री और पुरुष को न जाने क्या हो गया है? तब वे बोलते हैं कि इसके शरीर में बड़ा भूत, प्रेत, भैरव, शीतला आदि देवी आ गई है, जब तक तुम इसका उपाय न करोगे तब तक ये न छूटेंगे और प्राण भी ले लेंगे। जो तुम मलीदा वा इतनी भेट दो तो मन्त्र जप पुरश्चरण से झाड़ के इनको निकाल दें। तब वे अंधे और उनके सम्बन्धी बोलते हैं कि 'महाराज! चाहे हमारा सर्वस्व जाओ परन्तु इनको अच्छा कर दीजिए। तब तो उनकी बन पड़ती है। वे धूर्त कहते हैं अच्छा लाओ इतनी सामग्री, इतनी दक्षिणा, देवता को भेंट और ग्रहदान कराओ। झांझ, मृदंग, ढोल, थाली लेके उसके सामने बजाते गाते और उनमें से एक पाखण्डी उन्मत होके नाच कूद के कहता है ''मैं इसका प्राण ही ले लूँगा।'' तब वे अंधे उस भंगी चमार आदि नीच के पगों में पड़ के कहते हैं आप चाहे सो लीजिये इसको बचाइये। तब वह धूर्त बोलता है मैं हनुमान हूं, लाओ पक्की मिठाई, तेल, सिन्दूर, सवामन का रोट और लाल लंगोट। मैं देवी वा भैरव हूँ, लाओ पाँच बोतल मद्य, बीस मुर्गी, पाँच बकरे, मिठाई और वस्त्र। जब वे कहते हैं कि जो चाहो सो लो तब तो वह पागल बहुत नाचने कूदने लगता है परन्तु जो कोई बुद्धिमान उनकी भेंट पांच जूता, दंडा वा चपेटा, लातें मारे तो उसके हनुमान, देवी और भैरव झट प्रसन्न होकर भाग जाते हैं। क्योंकि वह उनका केवल धनादि हरण करने के प्रयोजनार्थ ढोंग है।

और जब किसी ग्रहस्त ज्योतिर्विदाभास के पास जाके वे कहते हैं - 'हे महाराज! इसको क्या है?' तब वे कहते हैं कि इस पर सूर्य्यादि क्रूर ग्रह चढ़े हैं। जो तुम इनकी शान्ति, पाठ, पूजा, दान कराओ तो इसको सुख हो जाय, नहीं तो बहुत पीड़ित होकर मर जाय तो भी आश्चर्य नहीं।

उत्तर - कहिये ज्योतिर्वित! जैसी यह पृथिवी जड़ है वैसे ही सूर्यादि लोक हैं, वे ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते। क्या ये चेतन हैं जो क्रोधित होके दुख और शान्त होके सुख दे सकें?

प्रश्न - क्या जो यह संसार में राजा प्रजा सुखी दुखी हो रहे हैं यह ग्रहों का फल नहीं है?

उत्तर - नहीं, ये सब पाप पुण्यों के फल हैं।

प्रश्न - तो क्या ज्योतिषशास्त्र झूठा है?

उत्तर - नहीं, जो उसमें अंक, बीज, रेखागणित विद्या है वह सब सच्ची, जो फल की लीला है वह सब झूठी है।

प्रश्न - क्या जो यह जन्मपत्र है सो निष्फल है।

उत्तर - हां, वह जन्मपत्र नहीं किन्तु उसका नाम 'शोकपत्र' रखना चाहिए क्योंकि जब सन्तान का जन्म होता है तब सबको आनन्द होता है। परन्तु वह आनन्द तब तक होता है कि जब तक जन्मपत्र बनके ग्रहों का फल न सुने। जब पुरोहित जन्मपत्र बनाने को कहता है तब उसके माता, पिता पुरोहित से कहते हैं 'महाराज! आप बहुत अच्छा जन्मपत्र बनाइये' जो धनाढय हो तो बहुत सी लाल पीली रेखाओं से चित्र विचित्र और निर्धन ही साधारण रीति से जन्मपत्र बनाके सुनाने को आता है। तब उसके मां बाप ज्योतिषी जी के सामने बैठ के कहते हैं इसका जन्मपत्र अच्छा तो है?'' ज्योतिषी कहता है जो है सो सुना देता हूँ। इसके जन्मग्रह बहुत अच्छे और मित्रग्रह भी बहुत अच्छे हैं जिनका फल धनाढय और प्रतिष्ठावान्, जिस सभा में जा बैठेगा तो सब के ऊपर इसक तेज पड़ेगा। शरीर से आरोग्य और राज्यमानी होगा। इत्यादि बातें सुनके पिता आदि बोलते हैं 'वाह-वाह ज्योतिषी जी! आप बहुत अच्छे हो।' ज्योतिषी जी समझते हैं इन बातों से कार्य सिद्ध नहीं होता। तब ज्योतिषी बोलता है कि 'ये ग्रह तो बहुत अच्छे हैं परन्तु ये ग्रह क्रूर हैं अर्थात फलाने-फलाने ग्रह के योग से 5 वर्ष में इसका मृत्युयोग है।' इसकी सुन के माता पितादि पुत्र के जन्म के आनन्द को छोड़ के शोकसागर में डूब कर ज्योतिषी से कहते हैं कि 'महाराज जी! अब हम क्या करें? तब ज्योतिषी जी कहते हैं उपाय करो। ग्रह के मन्त्र का जप कराओ और नित्य ब्राह्मणों का भोजन कराओगे तो अनुमान है कि नवग्रहों के विघ्न हट जायेंगे। अनुमान शब्द इसलिये है कि जो मर जायेगा तो कहेंगे हम क्या करें परमेश्वर के ऊपर कोई नहीं है। हमने तो बहुत सा यत्न किया और तुमने कराया,

उसके कर्म ऐसे ही थे। और जो बच जाये तो कहते हैं कि देखो - हमारे मन्त्र, देवता और ब्राह्मणों की कैसी शक्ति है? तुम्हारे लड़के को बचा दिया। यहां यह बात होनी चाहिये कि जो इनके जप पाठ से कुछ न हो तो दूने तिगुणे रुपये उन धूर्तों से ले लेने चाहिये और बच जाये तो भी ले लेने चाहिये क्योंकि जैसे ज्योतिषियों ने कहा कि इसके कर्म और परमेश्वर के नियम तोड़ने का सामर्थ्य किसी का नहीं वैसे गृहस्थ भी कहें कि यह अपने कर्म और परमेश्वर के नियम से बचा है, तुम्हारे करने से नहीं और तीसरे गुरु आदि भी पुण्य दान करा के आप ले लेते हैं तो उनको भी वही उत्तर देना, जो ज्योतिषियों को दिया था।

अब रह गई शीतला और मन्त्र तन्त्र यन्त्र आदि। ये भी ऐसे ही ढोंग मचाते हैं। कोई कहता है कि जो हम मन्त्र प्ढ़ के डोरा वा यन्त्र बना देवें तो हमारे देवता और पीर उस मन्त्र यन्त्र के प्रताप से उसको कोई विघ्न नहीं होने देते। उनको वही उत्तर देना चाहिये कि क्या तुम मृत्यु, परमेश्वर के नियम और कर्मफल से भी बचा सकोगे? तुम्हारे इस प्रकार करने से भी कितने ही लड़के मर जाते हैं और तुम्हारे घर में भी मर जाते हैं और क्या तुम मरण से बच सकोगे? तब वे कुछ भी नहीं कह सकते और वे धूर्त जान लेते हैं कि यहां हमारी दाल नहीं गलेगी। इससे इन सब मिथ्या व्यवहारों को छोड़ कर धार्मिक, सब देश के उपकारकर्ता, निष्कपटता से सब को विद्या पढ़ाने वाले, उत्तम विद्वान लोगों का प्रत्युपकार करना जैसा वे जगत् का उपकार करते हैं इस काम को कभी न छोड़ना चाहिए। और जितनी लीला रसायन, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि करना कहते हैं उनको भी महापामर समझना चाहिये।

इत्यादि मिथ्या बातों का उपदेश बाल्यावस्था ही में सन्तानों के हृदय में डाल दें कि जिससे स्वसन्तान किसी के भ्रमजाल में पड़ के दुःख न पावें और वीर्य की रक्षा से आनन्द और नाश करने में दुखप्राप्ति भी जना देनी चाहिये। जैसे देखों जिसके शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है तब उसको आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़ के बहुत सुख की प्राप्ति होती है। इसके रक्षण में यही रीति है कि विषयों की कथा, विषयी लोगों का संग, विषयों का ध्यान, स्त्री का दर्शन, एकान्त सेवन, संभाषण और स्पर्श आदि कर्म से ब्रह्मचारी लोग पृथक रह कर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त होवें। जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता वह नपुंसक महाकुलक्षणी और जिसको प्रमेह रोग होता है वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साह, साहस, धैर्य, बल, पराक्रमादि गुणों से रहित होकर नष्ट हो

जाता है। जो तुम लोग सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण, वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुनः इस जन्म में तुमको यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो सकेगा। जब तक हम लोग गृहकर्मों के करने वाले जीते हैं तभी तक तुमको विद्या ग्रहण और शरीर का बल बढ़ाना चाहिये। इसी प्रकार की अन्य-अन्य शिक्षा भी माता और पिता करें।

इसीलिए मातृमान् पितृमान् शब्द का ग्रहण उक्त वचन में किया है अर्थात जन्म से पाँचवें वर्ष तक बालकों को माता, 6 वर्ष से आठवें वर्ष तक पिता शिक्षा करें और नौवें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके अर्थात जहां पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करने वालों हों वहां लड़के और लड़कियों को भेज दें।

जो माता, पिता और आचार्य, सन्तान और शिष्यों का ताड़न करते हैं वे जानो अपने सन्तान और शिष्यों को अपने हाथ से अमृत पिता रहे हैं और जो सन्तानों वा शिष्यों का लाड़न करते हैं वे अपने सन्तानों और शिष्यों को विष पिला के नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं। क्योंकि लाड़न से सन्तान और शिष्य दोषयुक्त तथा ताड़ना से गुणयुक्त होते हैं और सन्तान और शिष्य लोग भी ताड़ना से प्रसन्न और लाड़न से अप्रसन्न सदा रहा करें। परन्तु माता, पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या, द्वेष से ताड़न न करें किन्तु ऊपर से भयप्रदान और भीतर से कृपादृष्टि रखें।

जैसे अन्य शिक्षा की वैसी चोरी, जारी, आलस्य, प्रमाद, मादक द्रव्य, मिथ्याभाषण, हिंसा, क्रूरता, ईर्ष्या, द्वेष, मोह आदि दोषों के छोड़ने और सत्याचार के ग्रहण करने की शिक्षा करें। जैसी हानि प्रतिज्ञा मिथ्या करने वाले की होती है वैसी अन्य किसी की नहीं। इससे जिसके साथ जैसी प्रतिज्ञा करनी उसके साथ वैसे ही पूरी करनी चाहिये। इसलिये सदा सत्यभाषण और सत्यप्रतिज्ञायुक्त सब को होना चाहिये। किसी को अभिमान अर्थात अहंकार है वह सब शोभा और लक्ष्मी का नाश कर देता है, इस वास्ते अभिमान करना ना चाहिए। छल, कपट वा कृतघ्नता से अपना ही हृदय दुःखित होता है तो दूसरे की कथा क्या कहनी चाहिए। छल और कपट उसको कहते हैं जो भीतर और बाहर दूसरे को मोह में डाल और दूसरे की हानि पर ध्यान न देकर स्वप्रयोजन सिद्ध करना। 'कृतघ्नता' उसे कहते हैं कि किसी के किए हुए उपकार को न मानना। क्रोधादि दोष और कटुवचन को छोड़ शान्त और मधुर वचन ही बोले और बहुत बकवाद न करे। जितना बोलना चाहिये उससे न्यून वा अधिक न

बोले। बड़ों को मान्य दे उनके सामने उठ कर जा के उच्चासन पर बैठावे, प्रथम 'नमस्ते' करे। उनके सामने उत्तमासन पर न बैठे। सभा में वैसे स्थान में बैठे जैसी अपनी योग्यता हो और दूसरा कोई न उठावें। विरोध किसी से न करें। सम्पन्न होकर गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग रखें। सज्जनों का संग और दुष्टों का त्याग, अपने माता, पिता और आचार्य की तन, मन और धनादि उत्तम-उत्तम पदार्थों से प्रीतिपूर्वक सेवा करें।

यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।। (तैत्तिरीय उपनिषद)

इसका यह अभिप्राय है कि माता पिता आचार्य्य अपने सन्तान और शिष्यों को सदा सत्य उपदेश करें और यह भी कहैं कि जो-जो हमारे धर्मयुक्त कर्म हैं उन-उन का ग्रहण करो और जो-जो दुष्ट कर्म हों उनका त्याग कर दिया करो। जो-जो सत्य जाने उन-उन का प्रकाश और प्रचार करें। किसी पाखण्डी दुष्टाचारी मनुष्य पर विश्वास न करें और जिस-जिस उत्तम कर्म के लिए माता, पिता और आचार्य आज्ञा देवें उस-उस का यथेष्ट पालन करो। जिस प्रकार आरोग्य, विद्या और बल प्राप्त हो उसी प्रकार भोजन छादन और व्यवहार करें करावें अर्थात जितनी क्षुधा हो उससे कुछ न्यून भोजन करें। मद्य मांसादि के सेवन से अलग रहे। अज्ञात गम्भीर जल में प्रवेश न करें क्योंकि जलजन्तु वा किसी अन्य पदार्थ से दुःख और जो तरना न जाने तो डूब ही जा सकता है। ''नाविज्ञाते जलाशये'' यह मनु का वचन। अविज्ञात जलाशय में प्रविष्ट होके स्नानादि न करें।

नीचे दृष्टि कर ऊँचे नीचे स्थान को देख के चले, सत्य से पवित्र करके वचन बोले, मन से विचार के आचरण करे।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा।।

यह किसी कवि का वचन है। वे माता और पिता अपने सन्तानों के पूर्ण वैरी हैं जिन्होंने उनको विद्या की प्राप्ति न कराई, वे विद्वानों की सभा में वैसे तिरस्कृत और कुशोभित होते हैं जैसे हंसों के बीच में बगुला। यही माता, पिता का कर्त्तव्य कर्म परमधर्म और कीर्ति का काम है जो अपने सन्तानों को तन, मन, धन से विद्या, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षायुक्त करना।

यह बालशिक्षा में थोड़ा सा लिखा, इतने ही से बुद्धिमान लोग बहुत समझ लेंगे।

★★★★★

तीसरा समुल्लास

पढ़ना पढ़ाना विषय

अब तीसरे समुल्लास में पढ़ने पढ़ाने का प्रकार लिखते हैं। सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभावरूप आभूषणों का धारण कराना माता, पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सोने, चांदी, माणिक, मोती, मूंगा आदि रत्नों से युक्त आभूषणों के धारण कराने से मनुष्य का आत्मा भूषित कभी नहीं हो सकता। क्योंकि आभूषणों के धारण करने से केवल देहाभिमान, विषयासक्ति और चोर आदि भय तथा मृत्यु का भी सम्भव है।

इसलिये आठ वर्ष के हों तभी लड़कों को लड़कों की और लड़कियों की लड़कियों की शाला में भेज देवें। जो अध्यापक पुरुष वा स्त्री दुष्टाचारी हों उनसे शिक्षा न दिलायें, किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हों वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने योग्य हैं। इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिये कि पांचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सकें। पाठशाला में अवश्य भेज देवें। जो न भेजे वह दण्डनीय हो ।

''पिता माता वा अध्यापक अपने लड़का लड़कियों को अर्थ सहित गायत्री मन्त्र का उपदेश कर दें। वह मन्त्रः–

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।

अर्थ– हे सबके रक्षक ईश्वर! आप सबके प्राणाधार हो, अतः प्राणों से प्रिय हो। आप दुखों को दूर करके सुख देते हो। यह चराचर संसार आपने ही बनाया है। हम आपके ग्रहण करने योग्य अति श्रेष्ठ और शुद्ध स्वरूप का ध्यान करते हैं। आप हमारी बुद्धियों को शुभ कर्म करने के लिए प्रेरित करो।

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ।।

यह मनुस्मृति का श्लोक है। जल से शरीर के बाहर के अवयव, सत्याचरण से मन, विद्या और तप अर्थात् सब प्रकार के कष्ट भी सह के धर्म ही के अनुष्ठान करने से जीवात्मा, ज्ञान अर्थात् पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के विवेक से बुद्धि दृढ़ निश्चय पवित्र होता है। इससे स्नान भोजन के पूर्व अवश्य करना।

यह योगशास्त्र का सूत्र है। जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब

प्रतिक्षण उत्तरोत्तर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता जाता है। जब तक मुक्ति न हो तब तक उसके आत्मा का ज्ञान बरावर बढ़ता जाता है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां च यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।

यह मनुस्मृति का श्लोक है। जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि धातुओं का मल नष्ट होकर शुद्ध होते हैं वैसे प्राणायाम करके मन आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं। प्राणायाम की विधिः-

जैसे अत्यन्त वेग से वमन होकर अन्न जल बाहर निकल जाता है वैसे प्राण को बल से बाहर फेंक के बाहर ही यथाशक्ति रोक देवे। जब बाहर निकालना चाहे तब मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच के वायु को बाहर फेंक दे। जब तक मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच रखे तब तक प्राण बाहर रहता है। इसी प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है। जब घबराहट हो तब धीरे-धीरे भीतर वायु को ले के फिर भी वैसे ही करता जाय जितना सामर्थ्य और इच्छा हो और मन में (ओ३म्) इसका जप करता जाय इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है।

उसके पश्चात संध्योपासना जिसको ब्रह्मयज्ञ भी कहते हैं और अग्निहोत्र जिसे देवयज्ञ कहते हैं, किया जाए। देवयज्ञ में मन्त्र के अन्त में स्वाहा बोला जाए।

'स्वाहा' शब्द का अर्थ यह है कि जैसा ज्ञान आत्मा में हो वैसा ही जीभ से बोले, विपरीत नहीं। जैसे परमेश्वर ने सब प्राणियों के सुख के अर्थ इस सब जगत् के पदार्थ रचे हैं वैसे मनुष्यों को भी परोपकार करना चाहिये ।

प्रश्न- होम से क्या उपकार होता है?

उत्तर- सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियों को दुःख और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है।

प्रश्न-चन्दनादि घिस के किसी को लगाये या घृतादि खाने को देवे तो बड़ा उपकार हो। अग्नि में डाल के व्यर्थ नष्ट करना बुद्धिमानों का काम नहीं।

उत्तर - जो तुम पदार्थविद्या जानते तो कभी ऐसी बात न कहते। क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता। देखो! जहाँ होम होता है वहां से दूर देश में स्थित पुरुष के नासिका से सुगन्ध का ग्रहण होता है वैसे दुर्गन्ध का भी।

इतने ही से समझ लो कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म हो के फैल के वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है।

प्रश्न- जब ऐसा ही है तो केशर, कस्तुरी, सुगन्धित पुष्प और अतर आदि के घर में रखने से सुगन्धित वायु होकर सुखकारक होगा।

उत्तर- उस सुगन्ध का यह सामर्थ्य नहीं है कि गृहस्थ वायु को बाहर निकाल कर शुद्ध वायु को प्रवेश करा सके क्योंकि उसमें भेदक शक्ति नहीं है और अग्नि ही का सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न-भिन्न और हल्का करके बाहर निकाल कर पवित्र वायु को प्रवेश करा देता है।

प्रश्न - तो मन्त्र पढ़ के होम करने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर- मन्त्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने के लाभ विदित हो जायें और मन्त्रों की आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें। वेदपुस्तकों का पठन-पाठन और रक्षा भी होवे।

प्रश्न- क्या इस होम करने के बिना पाप होता है ?

उत्तर- हां। क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न हो के वायु और जल को बिगाड़ कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दुःख प्राप्त करता है उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है। इसलिये उस पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उससे अधिक वायु और जल में फैलाना चाहिये। और खिलाने पिलाने से उसी एक व्यक्ति को सुख विशेष होता है। जितना घृत और सुगन्धादि पदार्थ एक मनुष्य खाता है उतने द्रव्य के होम से लाखों मनुष्यों का उपकार होता है परन्तु जो मनुष्य लोग घृतादि उत्तम पदार्थ न खायें तो उनके शरीर और आत्मा के बल की उन्नति न हो सके, इससे अच्छे पदार्थ खिलाना पिलाना भी चाहिये परन्तु उससे होम अधिक करना उचित है इसलिए होम का करना अत्यावश्यक है।

प्रश्न- प्रत्येक मनुष्य कितनी आहुति करे और एक-एक आहुति का कितना परिमाण है?

उत्तर- प्रत्येक मनुष्य को सोलह-सोलह आहुति और छः-छः माशे घृतादि एक-एक आहुति का परिमाण न्यून से न्यून चाहिये और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है। इसीलिये आर्यवरशिरोमणि महाशय ऋषि, महर्षि, राजे, महाराजे लोग बहुत सा होम करते और कराते थे। जब तक इस होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्यावर्त देश रोगों से रहित और सुखों से

पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाय।

यम पांच प्रकार के होते हैं -

तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।। योगसूत्र।।

अर्थात् (अहिंसा) वैरत्याग, (सत्य) सत्य मानना, सत्य बोलना और सत्य ही करना, (अस्तेय) अर्थात् मन वचन कर्म से चोरी त्याग, (ब्रह्मचर्य) अर्थात् उपस्थेन्द्रिय का संयम, (अपरिग्रह) अत्यन्त लोलुपता स्वत्वाभिमान रहित होना इन पांच यमों का सेवन सदा करें।

शौच सन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।। योगसूत्र

(शौच) अर्थात् स्नानादि से पवित्रता (सन्तोष) सम्यक् प्रसन्न होकर निरुद्यम रहना सन्तोष नहीं किन्तु पुरुषार्थ जितना हो सके उतना करना, हानि लाभ में हर्ष वा शोक न करना (तप) अर्थात् कष्टसेवन से भी धर्मयुक्त कर्मों का अनुष्ठान (स्वाध्याय) पढ़ना पढ़ाना (ईश्वरप्रणिधान) ईश्वर की भक्तिविशेष में आत्मा को अर्पित रखना ये पांच नियम कहाते हैं।

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता ।

काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ।। मनुस्मृति।।

अर्थ - अत्यन्त कामातुरता और निष्कामता किसी के लिए भी श्रेष्ठ नहीं, क्योंकि जो कामना न करे तो वेदों का ज्ञान और वेदविहित कर्मादि उत्तम कर्म किसी से न हो सकें।

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।

संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ।। मनुस्मृति ।।

अर्थ- जैसे विद्वान् सारथि घोड़ों को नियम में रखता है वैसे मन और आत्मा को खोटे कामों में खैंचने वाले विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के निग्रह में प्रयत्न सब प्रकार से करे। क्योंकि-

जीवात्मा इन्द्रियों के वश होके निश्चित बड़े-बड़े दोषों को प्राप्त होता है और जब इन्द्रियों को अपने वश में करता है तभी सिद्धि को प्राप्त होता है।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।

चत्वारि तस्य वर्द्धन्त आयुर्विद्या यशो बलम्।। मनुः।।

जो सदा नम्र सुशील विद्वान् और वृद्धों की सेवा करता है, उसका आयु, विद्या, कीर्ति और बल ये चार सदा बढ़ते हैं और जो ऐसा नहीं करते उनके आयु आदि चार नहीं बढ़ते।

विद्वान् और विद्यार्थियों को योग्य है कि वैरबुद्धि छोड़ के सब मनुष्यों

के कल्याण के मार्ग का उपदेश करें और उपदेष्टा सदा मधुर सुशीलतायुक्त वाणी बोले। जो धर्म की उन्नति चाहे वह सदा सत्य में चले और सत्य ही का उपदेश करे।। जिस मनुष्य के वाणी और मन शुद्ध तथा सुरक्षित सदा रहते हैं, वही सब वेदान्त अर्थात् सब वेदों के सिद्धान्तरूप फल को प्राप्त होता है।

आचार्य अन्तेवासी अर्थात् अपने शिष्य और शिष्याओं को इस प्रकार उपदेश करे कि तू सदा सत्य बोल, धर्माचार कर, प्रमादरहित होके पढ़ पढ़ा, पूर्ण ब्रह्मचर्य से समस्त विद्याओं को ग्रहण और आचार्य के लिये प्रिय धन देकर विवाह करके सन्तानोत्पत्ति कर, प्रमाद से सत्य को कभी मत छोड़, प्रमाद से धर्म का त्याग मत कर, प्रमाद से आरोग्य और चतुराई को मत छोड़, प्रमाद से पढ़ने और पढ़ाने को कभी मत छोड़। देव विद्वान और माता पितादि की सेवा में प्रमाद मत कर। जैसे विद्वान् का सत्कार करे उसी प्रकार माता, पिता, आचार्य और अतिथि की सेवा सदा किया कर। जो आनन्दित धर्मयुक्त कर्म हैं उन सत्यभाषणादि को किया कर, उनसे भिन्न मिथ्याभाषणादि कभी मत कर। जो हमारे सुचरित्र अर्थात धर्मयुक्त कर्म हों उनका ग्रहण कर और जो हमारे पापाचरण उनको कभी मत कर। जो कोई हमारे मध्य में उत्तम विद्वान् धर्मात्मा ब्राह्मण हैं उन्हीं के समीप बैठ और उन्हीं का विश्वास किया कर, श्रद्धा से देना, अश्रद्धा से देना, शोभा से देना, लज्जा से देना, भय से देना और प्रतिज्ञा से भी देना चाहिए। जब कभी तुझ को कर्म वा शील तथा उपासना ज्ञान में किसी प्रकार का संशय उत्पन्न हो, तो जो वे समदर्शी पक्षपातरहित योगी धर्म की कामना करने वाले धर्मात्मा जन हों जैसे वे धर्ममार्ग में वर्तें वैसे तू भी उसमें वर्ता कर। यही आदेश आज्ञा, यही उपदेश, यही वेद की उपनिषत् और यही शिक्षा है। इसी प्रकार वर्तना और अपना चाल चलन सुधारना चाहिए।

मनुष्यों को निश्चय करना चाहिए कि निष्काम पुरुष में नेत्र का संकोच विकाश का होना भी सर्वथा असम्भव है इससे यह सिद्ध होता है कि जो-जो कुछ भी करता है वह वह चेष्टा कामना के विना नहीं है।

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च।
तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः।। 1।।
आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते ।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्भवेत्।। 2।। मनु0।।

कहने, सुनने, सुनाने, पढ़ने, पढ़ाने का फल यही है कि जो वेद और वेदानुकूल स्मृतियों में प्रतिपादित धर्म का आचरण करना इसलिए धर्माचार में

सदा युक्त रहे (1)। क्योंकि जो धर्माचरण से रहित है वह वेदप्रतिपादित धर्मजन्य सुखरूप फल को प्राप्त नहीं हो सकता और जी विद्या पढ़ के धर्माचरण करता है वही सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होता है।। 2।।

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः ।
स साधुभिर्वहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः।। 1।। मनु0।।

जो वेद और वेद अनुकूल आप्त पुरुषों के किये शास्त्रों का अपमान करता है, उस वेदनिन्दक नास्तिक को जाति और देश से बाह्य कर देना चाहिए। क्योंकि-

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुविधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।। 1 ।। मनु0

श्रुति वेद, स्मृति वेदानुकूल आप्तोक्त मनुस्मृत्यादि शास्त्र, सत्पुरुषों का आचार जो सनातन अर्थात् वेदद्वारा परमेश्वरप्रतिपादित कर्म और अपने आत्मा में प्रिय अर्थात् जिसको आत्मा चाहता है जैसे कि सत्यभाषण ये चार धर्म के लक्षण अर्थात् इन्हीं से धर्माधर्म का निश्चय होता है। जो पक्षपातरहित न्याय सत्य का ग्रहण असत्य का सर्वथा परित्यागरूप आचार है उसी का नाम धर्म और इससे विपरीत जो पक्षपात सहित अन्यायाचरण सत्य का त्याग और असत्य का ग्रहण रूप कर्म है उसी को अधर्म कहते हैं।

अब जो-जो पढ़ना पढ़ाना हो यह वह अछी प्रकार परीक्षा करके होना योग्य है। परीक्षा पांच प्रकार से होती है-

एक - जो-जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदों से अनुकूल हो वह सत्य और उससे विरुद्ध असत्य है।

दूसरी - जो-जो सृष्टिक्रम से अनुकूल वह वह सत्य और जो-जो सृष्टीक्रम से विरुद्ध है वह असत्य है। जैसे कोई कहे बिना माता पिता के योग से लड़का उत्पन्न हुआ ऐसा कथन सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से सर्वथा असत्य है।

तीसरी - 'आप्त' अर्थात् जो धार्मिक विद्वान, सत्यवादी, निष्कपटियों का संग उपदेश के अनुकूल है वह यह ग्राह्य और जो-जो विरुद्ध वह यह अग्राह्य है।

चौथी - अपने आत्मा की पवित्रता विद्या के अनुकूल अर्थात् जैसा अपने को सुखप्रिय और दुःख अप्रिय है वैसे ही सर्वत्र समझ लेना कि मैं भी किसी को दुःख वा सुख दूंगा तो यह भी अप्रसन्न और प्रसन्न होगा।

और पांचवीं-आठों प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिहा, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव।

जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण का शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के साथ अव्य-वहित अर्थात् आवरणरहित सम्बन्ध होता है, इन्द्रियों के साथ मन का और मन के साथ आत्मा के संयोग से ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं।

अनुमान -

जैसे पुत्र को देख के पिता, पर्वतादि में धूम को देख के अग्नि, जगत् में सुख दुःख देख के पूर्वजन्म का ज्ञान होता है। कोई कहे कि 'माता पिता के बिना सन्तानोत्पत्ति, किसी ने मृतक जिलाये, पहाड़ उठाये, समुद्र में पत्थर तराये, चन्द्रमा के टुकड़े किये, परमेश्वर का अवतार हुआ, मनुष्य के सींग देखे और वन्ध्या के पुत्र और पुत्री का विवाह किया, इत्यादि सव असम्भव है। क्योंकि ये सब बातें सृष्टिक्रम से विरुद्ध है। जो बात सृष्टिक्रम के अनुकूल हो वही सम्भव है।

रूप, रस, गन्ध, स्पर्शवाली पृथिवी है। उसमें रूप, रस और स्पर्श अग्नि, जल और वायु के योग से हैं।

पृथिवी में गन्ध गुण स्वाभाविक है। वैसे ही जल में रस, अग्नि में रूप, वायु में स्पर्श और आकाश में शब्द स्वाभाविक है।

रूप, रस और स्पर्शवान् द्रवीभूत और कोमल जल कहाता है। परन्तु इनमें जल का रस स्वाभाविक गुण तथा रूप, स्पर्श अग्नि और वायु के योग से हैं। जल में शीतलत्व गुण भी स्वाभाविक है।

जो रूप और स्पर्शवाला है वह तेज हैं। परन्तु इसमें रूप स्वाभाविक और स्पर्श वायु के योग से है।

स्पर्श गुणवाला वायु है परन्तु इसमें भी उष्णता, शीतलता, तेज और जल के योग से रहते हैं।

रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आकाश में नहीं हैं। किन्तु शब्द ही आकाश का गुण है।

जिससे एक काल में दो पदार्थों का ज्ञान नहीं होता उसको मन कहते हैं। कारण के होने ही से कार्य होता है। कारण के न होने से कार्य कभी नहीं होता। जैसे कारण में गुण होते हैं वैसे ही कार्य में होते हैं।

इन्द्रियों और संस्कार के दोष से अविद्या उत्पन्न होती है। जो दुष्ट

अर्थात् विपरीत ज्ञान है उसको अविद्या कहते हैं। जो अदुष्ट अर्थात् यथार्थ ज्ञान है उसको विद्या कहते हैं।

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न श्रृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्त्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः।।

(ऋग्वेद 10,71,4)

अर्थ जो अविद्वान हैं वे सुनते हुए नहीं सुनते, देखते हुए नहीं देखते, बोलते हुए नहीं बोलते अर्थात अविद्वान लोग इस विद्या वाणी के रहस्य को नहीं जान सकते किन्तु जो शब्द अर्थ और सम्बन्ध का जानने वाला है उसके लिये विद्या - जैसे सुन्दर वस्त्र आभूषण धारण करती अपने पति की कामना करती हुई स्त्री अपना शरीर और स्वरूप का प्रकाश पति के सामने करती है वैसे विद्या विद्वान के लिए अपने स्वरूप का प्रकाश करती है, अविद्वानों के लिये नहीं।

परित्याग के योग्य गन्थ -

स्मृतियों में मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और अन्य सब स्मृति, सब तन्त्र ग्रन्थ, सब पुराण, सब उपपुराण, तुलसीदासकृत भाषारामायण, रुक्मिणीमंगलादि और सर्वभाषाग्रन्थ ये सब कपोलकल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं।

जो विद्या पढ़ने पढ़ाने के विघ्न हैं उनको छोड़ देवें। जैसा कुसंग अर्थात दुष्ट विषयी जनों का संग, दुष्टव्यसन जैसा मद्यादि सेवन और वेश्यागमनादि बाल्यावस्था में विवाह अर्थात पच्चीस वर्षों से पूर्व पुरुष और सोलहवें वर्ष से पूर्व स्त्री का विवाह हो जाना, पूर्ण ब्रह्मचर्य न होना, राजा, माता, पिता और विद्वानों का प्रेम वेदादि शास्त्रों के प्रचार में न होना, अतिभोजन, अति जागरण करना, पढ़ने पढ़ाने परीक्षा लेने वा देने में आलस्य वा कपट करना, सर्वोपरि विद्या का लाभ न समझना, बल, बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य, राज्य, धन की वृद्धि न मानना, ईश्वर का ध्यान छोड़ अन्य पाषाणादि जड़ मूर्ति के दर्शन-पूजन में व्यर्थ काल खोना, माता, पिता, अतिथि और आचार्य, विद्वान इनको सत्यमूर्ति मान कर सेवा सत्संग न करना, वर्णाश्रम के धर्म को छोड़ ऊर्ध्वपुण्ड्र, तिलक, कंठी, मालाधारण, एकादशी, त्रयोदशी आदि व्रत करना, काश्यादि तीर्थ और राम, कृष्ण, नारायण, शिव, भगवती, गणेशादि के नामस्मरण से पाप दूर होने का विश्वास।

प्रश्न - क्या स्त्री और शूद्र भी वेद पढ़ें? जो ये पढ़ेंगे तो हम फिर क्या करेंगे? और इनके पढ़ने में प्रमाण भी नहीं है? जैसे यह निषेध है -

स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः।

स्त्री और शूद्र न पढ़ें यह श्रुति है।

उत्तर - सब स्त्री और पुरुष अर्थात मनुष्यमात्र को पढ़ने का अधिकार है। तुम कूआ में पड़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोलकल्पना से हुई है। किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं। और सब मनुष्यों के वेदादि शास्त्र पढ़ने सुनने के अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के छब्बीसवें अध्याय में दूसरा मन्त्र है

परमेश्वर कहता है कि जैसे मैं सब मनुष्यों के लिये कल्याण अर्थात संसार और मुक्ति के सुख देनेहारी ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का उपदेश करता हूँ वैसे तुम भी किया करो।

देखो ! वेद में कन्याओं के पढ़ने का प्रमाण -

ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।। (अथर्ववेद 11, 5, 18)

जैसे लड़के ब्रह्मचर्य सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके युवती, विदुषी, अपने अनुकूल प्रिय सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं वैसे कुमारी ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवती होके पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान और पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष को प्राप्त होवे। इसलिये स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य और विद्या का ग्रहण अवश्य करना चाहिये।

राजा को योग्य है कि सब कन्या और लड़कों को उक्त समय से उक्त समय तक ब्रह्मचर्य में रखके, विद्वान कराना। जो कोई इस आज्ञा को न माने तो उसके माता पिता को दण्ड देना अर्थात राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात् लड़का व लड़की किसी के घर में न रहने पावें किन्तु आचार्य्यकुल में रहें। जब तक समावर्त्तन का समय न आवे तब तक विवाह न होने पावे।

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।

वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम्।।

संसार में जितने दान हैं अर्थात जल, अन्न, गौ, पृथिवी, वस्त्र, तिल, स्वर्ण और घृतादि इन सब दानों से वेदविद्या का दान अतिश्रेष्ठ है। इसलिये जितना बन सके उतना प्रयत्न तन, मन, धन से विद्या की वृद्धि में किया करें। जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है वही देश सौभाग्यवान् होता है।

★★★★★

चौथा समुल्लास

विवाह और गृहस्थ विषय

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ।। मनुस्मृति ।।

जो कन्या माता के कुल की छः पीढ़ियों में न हो और पिता के गोत्र की न हो उससे विवाह करना उचित है।

जैसे पानी में पानी मिलने से विलक्षण गुण नहीं होता, वैसे एक गोत्र पितृ वा मातृकुल में विवाह होने में धातुओं के अदल-बदल नहीं होने से उन्नति नहीं होती।

जैसे दूध में मिश्री वा सौंठ आदि औषधियों के योग होने से उत्तमता होती है वैसे ही भिन्न गोत्र मातृ पितृ कुल से पृथक् वर्तमान स्त्री पुरुषों का विवाह होना उत्तम है।

विवाह सम्बन्ध में निम्नलिखित दश कुलों का त्याग कर दें। जो कुल सत्क्रिया से हीन, सत्पुरुषों से रहित, वेदाध्ययन से विमुख, शरीर पर बड़े-बड़े लोम, अथवा बवासीर, क्षयी, दमा, खांसी, आमाशय, मिरगी, श्वेतकुष्ठ और गलितकुष्टयुक्त कुलों की कन्या वा वर के साथ विवाह होना न चाहिए, क्योंकि ये सब दुर्गुण और रोग विवाह करने वाले के कुल में भी प्रविष्ट हो जाते हैं, इसलिये उत्तम कुल के लड़के और लड़कियों का आपस में विवाह होना चाहिये।

न पीले वर्णवाली, न अधिकाङ्गी अर्थात् पुरुष से लम्बी चौड़ी अधिक बलवाली, न रोगयुक्ता, न लोमरहित, न बहुत लोमवाली, न बकवाद करनेहारी और भूरे नेत्रवाली।

जिसके सरल सूधे अङ्ग हों विरुद्ध न हों, जिसका नाम सुन्दर अर्थात् यशोदा, सुखदा आदि हो, हंस और हथिनी के तुल्य जिसकी चाल हो, सूक्ष्म लोम केश और दांत युक्त और जिसके सब अंग कोमल हो वैसी स्त्री के साथ विवाह करना चाहिये।

चाहे लड़का लड़की मरणपर्यन्त कुमार रहें। परन्तु असदृश अर्थात परस्पर विरुद्ध गुण कर्म स्वभाव वालों का विवाह कभी न होना चाहिये। इससे सिद्ध हुआ कि पूर्वोक्त समय से प्रथम वा असदृशों का विवाह होना अयोग्य है।

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।

यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्।। मनु0 ।।

जिस कुल में स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री सदा प्रसन्न रहती है उसी कुल में आनंद लक्ष्मी और कीर्ति निवास करती है और जहाँ विरोध, कलह होता है वहाँ दुःख, दरिद्र और निन्दा निवास करती है।

जब स्त्री पुरुष विवाह करना चाहें तब विद्या, विनय, शील, रूप, आयु, बल, कुल, शरीर का परिमाणादि यथायोग्य होना चाहिये। जब तक इनका मेल नहीं होता तब तक विवाह में कुछ भी सुख नहीं होता और न बाल्यावस्था में विवाह करने से सुख होता ।

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भयां शूद्रो आजायत।। (यजुर्वेद 31, 11)

अर्थ- इस ईश्वर की सृष्टि में वेद, ईश्वर का ज्ञाता ब्राह्मण मुख के समान है। बल पराक्रम युक्त क्षत्रिय भुजा के समान है। व्यवहार विद्या में प्रवीण वैश्य ऊरू के समान है। सेवा कार्य में प्रवीण शूद्र पैरों के समान है।

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।

क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च।।

जो शूद्रकुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान गुण, कर्म, स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाय, वैसे ही जो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यकुल में उत्पन्न हुआ हो और उसके गुण कर्म स्वभाव शूद्र के सदृश हों तो वह शूद्र हो जाय, वैसे क्षत्रिय, वैश्य के कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण वा शूद्र के समान होने से ब्राह्मण और शूद्र भी हो जाता है। अर्थात् चारों वर्णों में जिस-जिस वर्ण के सदृश जो-जो पुरुष वा स्त्री हो वह वह उसी वर्ण में गिनी जावे।

इन चारों वर्णों के कर्तव्य कर्म और गुण ये हैं-

ब्राह्मण के पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना कराना, दान देना, लेना ये छः कर्म हैं, परंतु लेना नीच कर्म है। (शमः) मन से बुरे काम की इच्छा भी न करना और उसको अधर्म में कभी भी प्रवृत न होने देना (दमः) कान और आँख जैसी इंद्रियों को अन्यायपूर्ण आचरण से रोककर धर्म में चलाना, सदा ब्रह्मचारी होकर धर्मानुष्ठान करना।

क्षत्रिय के कर्म - न्याय से प्रजा की रक्षा अर्थात् पक्षपात छोड़ के श्रेष्ठों का सत्कार और दुष्टों का तिरस्कार करना सब प्रकार से सब का पालन

(दान) विद्या, धर्म की प्रवृत्ति और सुपात्रों की सेवा में धनादि पदार्थों का व्यय करना (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञ करना वा कराना (अध्ययन) वेदादि शास्त्रों का पढ़ना तथा पढ़ाना और विषयों में न फस कर जितेन्द्रिय रह के सदा शरीर और आत्मा से बलवान् रहना।

वैश्य के कर्म- (पशुरक्षा) गाय आदि पशुओं का पालन-वर्द्धन करना (दान) विद्या धर्म की वृद्धि करने कराने के लिये धनादि का व्यय करना (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञों का करना (अध्ययन) वेदादि शास्त्रों का पढ़ना (वणिक्पथ) सब प्रकार के व्यापार करना (कुसीद) एक सैकड़े में चार, छः, आठ, बारह, सोलह वा बीस आनों से अधिक व्याज और मूल से दूना अर्थात् एक रुपया दिया हो तो सौ वर्ष में भी दो रुपये से अधिक न लेना और न देना (कृषि) खेती करना। ये वैश्य के गुण कर्म है।

शूद्र को योग्य है निन्दा, ईर्ष्या, अभिमान आदि दोषों को छोड़ के ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की सेवा यथावत् करना और उसी से अपना जीवनयापन करना यही एक शूद्र का कर्म गुण है।

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः
यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः।।
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा।।
तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैनित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च।।

पिता, भाई, पति और देवर स्त्रीयों को सत्कारपूर्वक भूषणादि से प्रसन्न रखें, जिनको बहुत कल्याण की इच्छा हो वे ऐसे करें। जिस घर में स्त्रियों का सत्कार होता है उसमें विद्यायुक्त पुरुष होके देवसंज्ञा धरा के आनन्द से क्रीड़ा करते हैं और जिस घर में स्त्रियों का सत्कार नहीं होता वहाँ सब क्रिया निष्फल हो जाती है। जिस घर व कुल में स्त्री लोग शोकातुर होकर दुःख पाती हैं वह कुल शीघ्र नष्ट भ्रष्ट हो जाता है और जिस घर या कुल में स्त्री लोग आनन्द से उत्साह और प्रसन्नता से भरी हुई रहती है वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है। इसलिए ऐश्वर्य की कामना करने हारे मनुष्यों को योग्य है कि सत्कार और उत्सव के समय में भूषण वस्त्र और भोजन आदि से स्त्रियों का

नित्यप्रति सत्कार करें।

स्त्री को योग्य है कि अतिप्रसन्नता से घर के कामों में चतुराईयुक्त सब पदार्थों के उत्तम संस्कार, घर की शुद्धि और व्यय में अत्यन्त उदार न रहे अर्थात सब चीज़ें पवित्र और पाक इस प्रकार बनावे जो औषधरूप होकर शरीर व आत्मा में रोग को न आने देवे। जो जो व्यय हो उस का हिसाब यथावत रखके पति को सुना दिया करे। घर के नौकर चाकरों से यथायोग्य काम लेवे। घर के किसी काम को बिगड़ने न देवे।

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रयान्त् न ब्रयूात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानूतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः
भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येव वा वदेत्।
शुष्कवैरं विवाद च न कुर्यात्केनचित्सह।। (मनुस्मृति)

सदा प्रिय सत्य दूसरे का हितकारक बोले अप्रिय सत्य अर्थात् काणे को काणा न बोले। अमृत अर्थात् झूठ दूसरे को प्रसन्न करने के अर्थ न बोले। सदा भद्र अर्थात् सब के हितकारी वचन बोला करे। बिना अपराध किसी के साथ विरोध वा विवाद न करे। जो-जो दूसरे का हितकर हो और बुरा भी माने तथापि कहे बिना न रहै।

पुरुषा बहवो राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।।
उद्योगपर्व-विदुरनीति0।।

है धृतराष्ट्र! इस संसार में दूसरे को निरन्तर प्रसन्न करने के लिये प्रिय बोलने वाले प्रशंसक लोग बहुत हैं परन्तु सुनने में अप्रिय विदित हो और वह कल्याण करने वाला वचन हो उसका कहने और सुनने वाला पुरुष दुर्लभ है। क्योंकि सत्पुरुषों को योग्य है कि मुख के सामने दूसरे का दोष कहना और अपना दोष सुनना परोक्ष में दूसरे के गुण सदा कहना। और दुष्टों की यही रीति है कि सम्मुख में गुण कहना और परोक्ष में दोषों का प्रकाश करना। जब तक मनुष्य दूसरे से अपने दोष नहीं सुनता वा कहने वाला नहीं कहता तब तक मनुष्य दोषों से छूटकर गुणी नहीं हो सकता।

कभी किसी की निन्दा न करे। जो गुणों में दोष, दोषों में गुण लगाना वह निन्दा और गुणों में गुण, दोषों में दोष का कथन करना स्तुति कहाती है। अर्थात् मिथ्याभाषण का नाम निन्दा और सत्यभाषण का नाम स्तुति है।

जो शीघ्र बुद्धि, धन और हित की वृद्धि करने हारे शास्त्र और वेद हैं

उनको नित्य सुनें और सुनावें। ब्रह्मचर्याश्रम में पढ़े हों उनको स्त्री पुरुष नित्य विचारा और पढ़ाया करें। क्योंकि जैसे-जैसे मनुष्य शास्त्रों को यथावत् जानता है वैसे-वैसे उस विद्या का विज्ञान बढ़ता जाता और उसी में रुचि बढ़ती रहती है।

पाँच महायज्ञ- गृहस्थ लोग पाँच यज्ञ नित्य करें। (1) ब्रह्मयज्ञ - ईश्वर की उपासना संध्या आदि करना। (2) देवयज्ञ - सुगन्ध और पौष्टिकता देने वाले पदार्थों से हवन करना। (3) पितृयज्ञ - माता, पिता पितामह आदि की उचित खानपान, भाषण तथा व्यवहार से सेवा करना (4) अतिथियज्ञ - घर में आए विद्वान, परोपकारी उपदेशक का खानपान आदि से उचित सत्कार करना (5) बलि वैश्वदेव यज्ञ - असहाय, कोढ़ी आदि मनुष्यों को भोजन आदि देकर सन्तुष्ट करना।

किया हुआ अधर्म निष्फल कभी नहीं होता परन्तु जिस समय अधर्म करता है उसी समय फल भी नहीं होता। इसलिये अज्ञानी लोग अधर्म से नहीं डरते। तथापि निश्चय जानो कि वह अधर्माचरण धीरे-धीरे तुम्हारे सुख के मूलों को काटता चला जाता है।

जैसे पत्थर की नौका में बैठ के जल में तरने वाला डूब जाता है. वैसे अज्ञानी दाता और ग्रहीता दोनों अधोगति अर्थात् दुःख को प्राप्त होते हैं।

स्त्री और पुरुष को चाहिये कि जैसे पुत्तिका अर्थात् दीमक वल्मीक अर्थात बांबी को बनाती है वैसे सब भूतों को पीड़ा न देकर परलोक अर्थात् परजन्म के सुखार्थ धीरे-धीरे धर्म का संचय करे। क्योंकि परलोक में न माता न पिता न पुत्र न स्त्री न ज्ञाति सहाय कर सकते हैं किन्तु एक धर्म ही सहायक होता है। देखिये अकेला ही जीव जन्म और मरण को प्राप्त होता, एक ही धर्म का फल सुख और अधर्म का दुःख-रूप फल उसको भोगता है। यह भी समझ लो कि कुटुम्ब में एक पुरुष पाप करके पदार्थ लाता है और महाजन अर्थात् सव कुटुम्ब उसको भोक्ता है। भोगनेवाले दोषभागी नहीं होते किन्तु अधर्म का कर्ता ही दोष का भागी होता है। जब कोई किसी का सम्बन्धी मर जाता है उस को मट्टी के ढेले के समान भूमि में छोड़ कर पीठ दे बन्धुवर्ग विमुख होकर चले जाते हैं। कोई उसके साथ जाने वाला नहीं होता किन्तु एक धर्म ही उसका संगी होता है।।

जब विवाह होवे तब स्त्री के साथ पुरुष और पुरुष के साथ स्त्री बिक चुकी अर्थात जो स्त्री और पुरुष के साथ हाव, भाव, नखशिखाग्रपर्यन्त जो

कुछ है वह वीर्यादि एक दूसरे के आधीन हो जाता है। स्त्री वा पुरुष प्रसन्नता के बिना कोई भी व्यवहार न करें। इन में बड़े अप्रियकारक व्यभिचार, वेश्या, परपुरुषगमनादि काम हैं। इनको छोड़ के अपने पति के साथ स्त्री और स्त्री के साथ पति सदा प्रसन्न रहें।

मद्य, भांग आदि मादक द्रव्यों का पीना, दुष्ट पुरुषों का सङ्ग, पतिवियोग, अकेली जहाँ तहां व्यर्थ पाखण्डी आदि के दर्शन मिस से फिरती रहना और पराये घर में जाके शयन करना वा वास ये छः स्त्री को दूषित करने वाले दुर्गुण हैं और ये पुरुषों के भी हैं। पति और स्त्री का वियोग दो प्रकार का होता है-कहीं कार्यार्थ देशान्तर में जाना और दूसरा मृत्यु से वियोग होना। इसमें से प्रथम का उपाय यही है कि दूर देश में यात्रार्थ जावे तो स्त्री को भी साथ रक्खे। इसका प्रयोजन यह है कि बहुत समय तक वियोग न रहना चाहिये ।

जैसे नदी और बड़े-बड़े नद तब तक भ्रमते ही रहते हैं जब तक समुद्र को प्राप्त नहीं होते, वैसे गृहस्थ ही के आश्रय से सब आश्रम स्थिर रहते हैं। विना इस आश्रम के किसी आश्रम का कोई व्यवहार सिद्ध नहीं होता। जिसने ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी तीन आश्रमों को दान और अन्नादि देके प्रतिदिन गृहस्थ ही धारण करता है इससे गृहस्थ ज्येष्ठाश्रम है, अर्थात् सब व्यवहारों में धुरन्धर कहाता है इसलिये जो मोक्ष और संसार के सुख की इच्छा करता हो यह प्रयत्न से गृहाश्रम धारण करे।

नियोग - यदि विवाहित स्त्री पुरुष के सन्तान न हो तो पुरुष किसी अन्य स्त्री से या स्त्री किसी अन्य पुरुष से संबंध बनाकर के अपने लिए संतान उत्पन्न कर सकते हैं। इसे नियोग कहते हैं। जैसे प्रसिद्धि से विवाह होता है वैसी ही प्रसिद्धि से नियोग होता है। जिस प्रकार विवाह में भद्र पुरुषों की अनुमति और कन्या-वर की प्रसन्नता होती है वैसे नियोग में भी होती है।

★★★★★

पाँचवां समुल्लास

वानप्रस्थ, सन्यास विषय

मनुष्यों को उचित है कि ब्रह्मचर्य्याश्रम को समाप्त करके गृहस्थ होकर वानप्रस्थ और वानप्रस्थ होके सन्यासी होवें अर्थात् यह अनुक्रम से आश्रम का विधान है।

जब गृहस्थ शिर के श्वेत केश और त्वचा ढीली हो जाय और लड़के का लड़का भी हो गया हो तब वन में जाके वसे। सव ग्राम के आहार और वस्त्रादि सब उत्तमोत्तम पदार्थों को छोड़ पुत्रों के पास स्त्री को रख वा अपने साथ ले के वन में निवास करे।

इस प्रकार वनों में आयु का तीसरा भाग अर्थात् पचासवें वर्ष से पचहत्तरवें वर्ष पर्यन्त वानप्रस्थ होके आयु के चौथे भाग में संगों को छोड़ के परिव्राट् अर्थात् संन्यासी हो जावे।

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।

नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।। (कठोपनिषद)

जो दुराचार से पृथक नहीं, जिसको शान्ति नहीं, जिसका आत्मा योगी नहीं और जिसका मन शान्त नहीं है, वह संन्यास ले के भी प्रज्ञान से परमात्मा को प्राप्त नहीं होता।

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेद् ज्ञान आत्मनि ।

ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥ (कठोपनिषद्)

सन्यासी बुद्धिमान् वाणी और मन को अधर्म से रोके। उनको ज्ञान और आत्मा में लगावे और उस ज्ञान, स्वात्मा को परमात्मा में लगावे और उस विज्ञान को शान्तस्वरूप आत्मा में स्थिर करे।

जो देहधारी है वह सुख दुःख की प्राप्ति से पृथक कभी नहीं रह सकता और जो शरीररहित जीवात्मा मुक्ति में सर्वव्यापक परमेश्वर के साथ शुद्ध होकर रहता है तब उसको सांसारिक सुख दुःख प्राप्त नहीं होता।

धर्म के दस लक्षण –

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। (मनुस्मृति)

पहिला लक्षण – (धृति) सदा धैर्य रखना। दूसरा – (क्षमा) जो कि निन्दा स्तुति मानापमान हानिलाभ आदि दुःखों में भी सहनशील रहना। तीसरा

– (दम) मन को सदा धर्म में प्रवृत्त कर अधर्म से रोक देना अर्थात् अधर्म करने की इच्छा भी न उठे। चौथा – (अस्तेय) चोरी त्याग अर्थात् विना आज्ञा वा छल कपट विश्वासघात वा किसी व्यवहार तथा वेदविरुद्ध उपदेश से परपदार्थ का ग्रहण करना चोरी और उसको छोड़ देना साहुकारी कहाती हैं। पांचवां – (शौच) रागद्वेष पक्षपात छोड़ के भीतर और जल मृत्तिका मार्जन आदि से बाहर की पवित्रता रखनी। छठा – (इन्द्रियनिग्रह) अधर्माचरणों से रोक के इन्द्रियों को धर्म ही में सदा चलाना। सातवां – (धीः) मादक द्रव्य बुद्धिनाशक अन्य पदार्थ दुष्टों का संग आलस्य प्रमाद आदि को छोड़ के श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन सत्पुरुषों का सङ्ग योगाभ्यास धर्माचरण ब्रह्मचर्य आदि शुमकर्मों से बुद्धि का बढ़ाना। आठवां – (विद्या) पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त यथार्थज्ञान और उनसे यथायोग्य उपकार लेना सत्य जैसा आत्मा में वैसा मन में, जैसा मन में वैसा वाणी में जैसा वाणी में वैसा कर्म में वर्तना इससे विपरीत अविद्या है। नववां – (सत्य) जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसा ही समझना वैसा ही बोलना और वैसा ही करना भी तथा दशवां – (अक्रोध) क्रोधादि दोषों को छोड़के शान्त्यादि गुणों का ग्रहण करना धर्म का लक्षण है। इस दश लक्षणयुक्त पक्षपातरहित न्यायाचरण धर्म का सेवन चारों आश्रम वाले करें और इसी वेदोक्त धर्म ही में आप चलना और दूसरों को समझा कर चलाना सन्यासियों का विशेष धर्म है।

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन ।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।

यह चाणक्य नीतिशास्त्र का श्लोक है। विद्वान् और राजा की कभी तुल्यता नहीं हो सकती, क्योंकि राजा अपने राज्य ही में मान और सत्कार पाता है और विद्वान् सर्वत्र मान और प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है। इसलिये विद्या पढ़ने, सुशिक्षा लेने और बलवान् होने आदि के लिये ब्रह्मचर्य्य सब प्रकार के उत्तम व्यवहार सिद्ध करने के अर्थ गृहस्थ, विचार ध्यान और विज्ञान बढ़ाने तपश्चर्या करने के लिये वानप्रस्थ और वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रचार, धर्म व्यवहार का ग्रहण और दुष्ट व्यवहार के त्याग, सत्योपदेश और सब को निःसंदेह करने आदि के लिये सन्यासाश्रम है।

★★★★★

छठा समुल्लास

राजधर्म विषय

जो प्रजा से स्वतन्त्र स्वाधीन राजवर्ग रहे तो (राष्ट्रमेव विश्याहति) राज्य में प्रवेश करके प्रजा का नाश किया करें। जिसलिये अकेला राजा स्वाधीन वा उन्मत्त होके प्रजा का नाशक होता है वह राजा प्रजा को खाये जाता (अत्यन्त पीड़ित करता) है इसलिये किसी एक को राज्य में स्वाधीन न करना चाहिये। जैसे सिंह वा मांसाहारी हृष्ट पुष्ट पशु को मार कर खा लेते हैं, वैसे स्वतन्त्र राजा प्रजा का नाश करता है अर्थात् किसी को अपने से अधिक न होने देता, श्रीमान् को लूट खसूट अन्याय से दन्ड देके अपना प्रयोजन पूरा करेगा।

हे मनुष्यो ! जो इस मनुष्य के समुदाय में परम ऐश्वर्य का कर्तृता शत्रुओं को जीत सके, जो शत्रुओं से पराजित न हो राजाओं में सर्वोपरि विराजमान प्रकाशमान हो सभापति होने को अत्यन्त योग्य प्रशंसनीय गुण कर्म स्वभावयुक्त सत्करणीय समीप जाने और शरण लेने योग्य सबका माननीय होवे उसी को सभापति राजा करें।

वह समेश राजा इन्द्र अर्थात् विद्युत के समान शीघ्र ऐश्वर्यकर्तृता, वायु के समान सब के प्राणवत् प्रिय और हृदय की बात जाननेहारा, यम पक्षपातरहित न्यायाधीश के समान वर्तृतनेवाला, सूर्य के समान न्याय धर्म विद्या का प्रकाशक अन्धकार अर्थात् अविद्या अन्याय का निरोधक अग्नि के समान दुष्टों को भस्म करनेहारा, वरुण अर्थात् बांधनेवाले के सदृश दुष्टों को अनेक प्रकार से बांधने वाला, चन्द्र के तुल्य श्रेष्ठ पुरुषों को आनन्ददाता, धनाध्यक्ष के समान कोशों का पूर्ण करने वाला सभापति होवे।

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः।
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः।।
दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः।।
समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वा रंजयति प्रजाः।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः।।
दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च मिद्येरन् सर्वसेतवः।
सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात्।।

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति।।
तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम्।
समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम्।।

जो दण्ड है वही पुरुष राजा, वही न्याय का प्रचारकर्ता और सब का शासनकर्ता, वही चार वर्ण और चार आश्रमों के धर्म का प्रतिभू अर्थात् जामिन है।।

वही प्रजा का शासनकर्ता सब प्रजा का रक्षक, सोते हुए प्रजास्थ मनुष्यों में जागता है इसीलिये बुद्धिमान् लोग दण्ड ही को धर्म कहते हैं।

जो दण्ड अच्छे प्रकार विचार से धारण किया जाय तो वह सब प्रजा को आनन्दित कर देता है और जो विना विचारे चलाया जाय तो सब ओर से राजा का विनाश कर देता है।

विना दण्ड के सब वर्ण दूषित और सब मर्यादा छिन्न-भिन्न हो जायें। दण्ड के यथावत् न होने से सब लोगों का प्रकोप हो जावे।।

जहां कृष्णवर्ण रक्तनेत्र भयङ्कर पुरुष के समान पापों का नाश करनेहारा दण्ड विचरता है वहां प्रजा मोह को प्राप्त न होके आनन्दित होती है परन्तु जो दण्ड का चलाने वाला पक्षपातरहित विद्वान् हो तो।।

जो उस दण्ड का चलाने वाला सत्यवादी विचार के करनेहारा, बुद्धिमान् धर्म अर्थ और काम की सिद्धि करने में पंडित राजा है उसी को उस दण्ड का चलानेहारा विद्वान लोग कहते हैं।

क्योंकि जो राजा काम से उत्पन्न हुए दश दुष्ट व्यसनों में फसता है. वह अर्थ अर्थात राज्य धनादि और धर्म से रहित हो जाता है और जो क्रोध से उत्पन्न हुए आठ बुरे व्यसनों में फसता है वह शरीर से भी रहित हो जाता है।

काम से उत्पन्न हुए व्यसन गिनाते हैं, देखो - मृगया खेलना, अर्थात् चोपड़ खेलना जुआ खेलनादि, दिन में सोना, कामकथा वा दूसरे की निन्दा किया करना, स्त्रियों का अति संग, मादक द्रव्य अर्थात् मद्य, अफीम, भांग, गांजा, चरस आदि का सेवन गाना बजाना, नाचना वा नाच कराना सुनना और देखना, वृथा इधर-उधर घूमते रहना ये दश कामोत्पन्न व्यसन हैं ।

क्रोध से उत्पन्न व्यसनों को गिनाते हैं - चुगली करना, विना विचारे बलात्कार से किसी की स्त्री से बुरा काम करना, द्रोह रखना, ईर्ष्या अर्थात दूसरे की बड़ाई वा उन्नति देख कर जला करना, 'असूया' दोषों में गुण, गुणों

में दोषारोपण करना, ''अर्थदूषण' अर्थात् अधर्मयुक्त बुरे कामों में धनादि का व्यय करना, कठोर, वचन बोलना और बिना अपराध कड़ा वचन वा विशेष दण्ड देना ये आठ दुर्गुण क्रोध से उत्पन्न होते हैं।

इसमें यह निश्चय है कि दुष्ट व्यसन में फसने से मर जाना अच्छा है क्योंकि जो दुष्टाचारी पुरुष है वह अधिक जियेगा तो अधिक-अधिक पाप करके नीच-नीच गति अर्थात् अधिक-अधिक दुःख को प्राप्त होता जायगा और जो किसी व्यसन में नहीं फसा वह मर भी जायेगा तो भी सुख को प्राप्त होता जायेगा। इसलिये विशेष राजा और सब मनुष्यों को उचित है कि कभी मृगया और मद्यपानादि दुष्ट कामों में न फसें और दुष्ट व्यसनों से पृथक होकर धर्मयुक्त गुण कर्म स्वभावों में सदावर्त्त के अच्छे-अच्छे काम किया करें।

यथोब्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति।
तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्र हन्याच्च परिपन्थिनः।।
मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया।
सोऽचिराद् भृश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः।।

जैसे धान्य का निकालने वाला छिलकों को अलग कर धान्य की रक्षा करता अर्थात् टूटने नहीं देता है वैसे राजा डाकू चोरों को मारे और राज्य की रक्षा करे। जो राजा मोह से, अविचार से अपने राज्य को दुर्बल करता है, वह राज्य और अपने बन्धुसहित जीवन से पूर्व ही शीघ्र नष्ट भ्रष्ट हो जाता है।

जो राजपुरुष अन्याय से वादी प्रतिवादी से गुप्त धन लेके पक्षपात से अन्याय करे उसका सर्वस्वहरण करके यथायोग्य दण्ड देकर ऐसे देश में रखे कि जहाँ से पुनः लौटकर न आ सके क्योंकि यदि उस को दण्ड न दिया जाय तो उसको देख के अन्य राजपुरुष भी ऐसे दुष्ट काम करें और दण्ड दिया जाय तो बचे रहें।

जैसे जोंक बछड़ा और भमरा थोड़े- थोड़े भोग्य पदार्थ को ग्रहण करते हैं वैसे राजा प्रजा से थोड़ा-थोड़ा वार्षिक कर लेवे। अतिलोभ से अपने, दूसरों के सुख के मूल को उच्छिन्न अर्थात नष्ट कदापि न करे क्योंकि जो व्यवहार और सुख के मूल का छेदन करता है वह अपने और उनको पीड़ा ही देता है।

जिस भृत्यसहित देखते हुए राजा के राज्य में से डाकू लोग रोती विलाप करती प्रजा के पदार्थ और प्राणों को हरते रहते हैं वह जानो भृत्य अमात्यसहित मृतक है जीता नहीं और महादुःख का पाने वाला है।

युद्ध समय के नियम

जो भीतर से शत्रु से मिला हो और अपने साथ भी ऊपर से मित्रता रक्खे, गुप्तता से शत्रु को भेद देवे, उसके आने जाने में, उससे बात करने में अत्यन्त सावधानी रखे, क्योंकि भीतर शत्रु ऊपर मित्र पुरुष को बड़ा शत्रु समझना चाहिये ।।

किसी समय उचित समझे तो शत्रु को चारों ओर से घेर कर रोक रखें और इसके राज्य को पीड़ित कर शत्रु के चारा, अन्न, जल और ईन्धन को नष्ट दूषित कर दे। शत्रु के तालाब, नगर के प्रकोष्ठ और खाई को तोड़ फोड़ दे, रात्रि में उनको भय देवे और जीतने का उपाय करे।

मित्र का लक्षण यह हैं - राजा सुवर्ण और भूमि की प्राप्ति से वैसा नहीं बढ़ता कि जैसे निश्चल प्रेमयुक्त भविष्यत् की बातों को सोचने और कार्य सिद्ध करने वाले समर्थ मित्र अथवा दुर्बल मित्र को भी प्राप्त होके बढ़ता है।

धर्म को जानने और कृतज्ञ अर्थात् किये हुए उपकार को सदा मानने वाले प्रसन्नस्वभाव अनुरागी स्थिरारम्भी लघु छोटे मी मित्र को प्राप्त होकर प्रशंसित होता है।

सदा इस बात को दृढ़ रक्खे कि कभी बुद्धिमान, कुलीन, शूर, वीर, चतुर, दाता, किये हुए को जाननेहारे और धैर्यवान् पुरुष को शत्रु न बनाये क्योंकि जो ऐसे को शत्रु बनावेगा वह दुख पावेगा।

उदासीन का लक्षण - जिसमें प्रशंसित गुणयुक्त अच्छे बुरे मनुष्यों का ज्ञान, शूरवीरता और करुणा भी स्थूल लक्ष्य अर्थात् ऊपर-ऊपर की बातों को निरन्तर सुनाया करे वह उदासीन कहाता है।

जो व्यापार करने वाले वा शिल्पी को सुवर्ण और चांदी का जितना लाभ हो, उसमें से पचासवां भाग, चावल आदि अन्नों में छठा, आठवां वा बाहरवां भाग लिया करे, और जो धन लेवे तो भी उस प्रकार से लेवे कि जिस से किसान आदि खाने पीने और धन से रहित होकर दुःख न पावें। क्योंकि प्रजा के धनाढ्य आरोग्य खान पान आदि से सम्पन्न रहने पर राजा की बड़ी उन्नति होती है। प्रजा को अपने सन्तान के सदृश सुख देवे और प्रजा अपने पिता सदृश राजा और राजपुरुषों को जाने। यह बात ठीक है कि राजाओं के राजा किसान आदि परिश्रम करने वाले हैं और राजा उनका रक्षक है। जो प्रजा न हो तो राजा किसका ? और राजा न हो तो प्रजा किस की कहावे? दोनों अपने-अपने काम में स्वतन्त्र और मिले हुए प्रीतियुक्त काम में परतन्त्र

रहें। प्रजा की साधारण सम्मति के विरुद्ध राजा वा राजपुरुष न हों, राजा की आज्ञा के विरुद्ध राजपुरुष वा प्रजा न चले, यह राजा का राजकीय निज काम अर्थात् जिसको 'पोलिटिकल' कहते है संक्षेप से कह दिया।

सभा वा न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं वा समच्जसम् ।
अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्विषी।।
यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः।।
धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।।
वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम्।
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत्।।
एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति।।
पादोऽधर्मस्य कर्तृतारं पादः साक्षिणमृच्छति।
पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति।।
राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः।
एनो गच्छति कर्तृतारं निन्दाहों यत्र निन्द्यते।।

धार्मिक मनुष्य को योग्य है कि सभा में कभी प्रवेश न करे और जो प्रवेश किया हो तो सत्य ही बोले। जो कोई सभा में अन्याय होते हुए को देखकर मौन रहे अथवा सत्य न्याय के विरुद्ध बोले वह महापापी होता है।।

जिस सभा में अधर्म से धर्म, असत्य से सत्य सब सभासदों के देखते हुए मारा जाता है उस सभा में सब मृतक के समान हैं जानो उनमें कोई भी नहीं जीता।।

मरा हुआ धर्म मारने वाले का नाश और रक्षित किया हुआ धर्म रक्षक की रक्षा करता है इसलिये धर्म का हनन कभी न करना इस डर से कि मरा हुआ धर्म कभी हमको न मार डाले।।

जो सब ऐश्वर्यों के देने और सुखों की वर्षा करने वाला धर्म है उसका लोप करता है उसी को विद्वान् लोग वृषल अर्थात् शूद्र और नीच जानते हैं इसलिये किसी मनुष्य को धर्म का लोप करना उचित नहीं।।

इस संसार में एक धर्म ही सुहृद है जो मृत्यु के पश्चात् भी साथ चलता है और सब पदार्थ वा संगी शरीर के नाश के साथ ही नाश को प्राप्त

होते हैं अर्थात् सब का संग छूट जाता है परन्तु धर्म का संग कभी नहीं छूटता।।

जब राजसभा में पक्षपात से अन्याय किया जाता है वहां अधर्म के चार विभाग हो जाते हैं उनमें से एक अधर्म के कर्तृता, दूसरा साक्षी, तीसरा सभासदों और चौथा पाद अधर्मी सभा के सभापति राजा को प्राप्त होता है।

जिस सभा में निन्दा के योग्य की निन्दा, स्तुति के योग्य की स्तुति, दण्ड के योग्य को दंड और मान्य के योग्य का मान्य होता है वहां राजा और सब सभासद् पाप से रहित और पवित्र हो जाते हैं पाप के कर्तृता ही को पाप प्राप्त होता है। अब साक्षी कैसे करने चाहिये।

साक्षी –

जो साक्षी सत्य बोलता है वह जन्मान्तर में उत्तम जन्म और उत्तम लोकान्तरों में जन्म को प्राप्त होके सुख भोगता है। इस जन्म वा परजन्म में उत्तम कीर्ति को प्राप्त होता है, क्योंकि जो यह वाणी है वही वेदों में सत्कार और तिरस्कार का कारण लिखी है। जो सत्य बोलता है वह प्रतिष्ठित और मिथ्यावादी निन्दित होता है।

सत्य बोलने से साक्षी पवित्र होता और सत्य ही बोलने से धर्म बढ़ता है, इससे सब वर्णों में साक्षियों को सत्य ही बोलना योग्य है।

आत्मा का साक्षी आत्मा और आत्मा की गति आत्मा है इसको जान के है पुरुष ! तू सब मनुष्यों का उत्तम साक्षी अपने आत्मा का अपमान मत कर अर्थात् सत्यभाषण जो कि तेरे आत्मा मन वाणी में है वह सत्य और जो इससे विपरीत है वह मिथ्याभाषण है।

जिस बोलते हुए पुरुष का विद्वान् क्षेत्रज्ञ अर्थात शरीर का जानने हारा आत्मा भीतर शङ्का को प्राप्त नहीं होता उससे भिन्न विद्वान् लोग किसी को उत्तम पुरुष नहीं जानते।

हे कल्याण की इच्छा करने हारे पुरुष। जो तू 'मैं अकेला है' ऐसा अपने आत्मा में जानकर मिथ्या बोलता है सो ठीक नहीं है किन्तु जो दूसरा तेरे हृदय में अन्तर्यामीरूप से परमेश्वर पुण्य पाप का देखने वाला मुनि स्थित है उस परमात्मा से डरकर सदा सत्य बोला कर।

क्योंकि इस संसार में जो अधर्म से दण्ड करना है वह पूर्व प्रतिष्ठा वर्तमान और भविष्यत् में और परजन्म में होने वाली कीर्ति का नाश करनेहारा है और परजन्म में भी दुःखदायक होता है। इसलिये अधर्मयुक्त दण्ड किसी पर

न करे।

जो राजा दण्डनीयों को न दण्ड और अदण्डनीयों को दण्ड देता है अर्थात् दण्ड देने योग्य को छोड़ देता और जिसको दण्ड न देना चाहिये उसको दण्ड देता है वह जीता हुआ बड़ी निन्दा को और मरे पीछे बड़े दुःख को प्राप्त होता है इसलिये जो अपराध करे उसको सदा दण्ड देवे और अनपराधी को दण्ड कभी न देवे।

प्रथम वाणी का दण्ड अर्थात् उसकी 'निन्दा' दूसरा 'धिक' दण्ड अर्थात् तुम को धिक्कार है तुने ऐसा बुरा काम क्यों किया, तीसरा उससे 'धन लेना' और 'वध' दण्ड अर्थात् उसको कोड़ा या बेंत से मारना वा शिर काट देना।

चोर जिस प्रकार जिस-जिस अङ्ग से मनुष्यों में विरुद्ध चेष्टा करता है उस उस अङ्ग को सब मनुष्यों की शिक्षा के लिये राजा हरण अर्थात छेदन कर दे।

चाहे पिता, आचार्य, मित्र, स्त्री, पुत्र और पुरोहित क्यों न हो जो स्वधर्म में स्थित नहीं रहता वह राजा का अदण्ड्य नहीं होता अर्थात जब राजा न्यायासन पर बैठ न्याय करे तब किसी का पक्षपात न करे किन्तु यथोचित दण्ड देवे ॥

जिस अपराध में साधारण मनुष्य पर एक पैसा दण्ड हो उसी अपराध में राजा को सहस्र पैसा दण्ड होवे अर्थात् साधारण मनुष्य से राजा को सहस्र गुणा दण्ड होना चाहिये। मन्त्री अर्थात् राजा के दीवान को आठ सौ गुणा उससे न्यून को सात सौ गुणा और उससे भी न्यून को छः सौ गुणा इसी प्रकार उत्तर-उत्तर अर्थात जो एक छोटे से छोटा भृत्य अर्थात् चपरासी है उसको आठ गुणे दण्ड से कम न होना चाहिये। क्योंकि यदि प्रजापुरुषों से राजपुरुषों को अधिक दण्ड न होवे तो राजपुरुष प्रजा पुरुषों का नाश कर देवे, जैसे सिंह अधिक और बकरी थोड़े दण्ड से ही वश में आ जाती है। इसलिये राजा से लेकर छोटे से छोटे भृत्य पर्य्यन्त राजपुरुषों को अपराध में प्रजापुरुषों से अधिक दण्ड होना चाहिये।

वैसे ही जो कुछ विवेकी होकर चोरी करे उस शूद्र को चोरी से आठ गुणा, वैश्य को सोलह गुणा, क्षत्रिय को बत्तीस गुणा, ब्राह्मण को चौसठ गुणा वा सौ गुणा अथवा एक सौ अट्ठाईस गुणा दंड होना चाहिये अर्थात जिसका

जितना ज्ञान और जितनी प्रतिष्ठा अधिक हो उसको अपराध में उतना ही अधिक दण्ड होना चाहिए।

राज्य के अधिकारी धर्म और ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला राजा बलात्कार काम करने वाले डाकूओं को दण्ड देने में एक क्षण भी देर न करे।

जो दुष्ट वचन बोलने, चोरी करने, बिना अपराध से दण्ड देने वाले से भी साहस बलात्कार काम करने वाला है वह अतीव पापी दुष्ट है। जो राजा साहस में वर्तमान पुरुष को न दण्ड देकर सहन करता है वह राजा शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है और राज्य में द्वेष उठता है।

न मित्रता, न पुष्कल धन की प्राप्ति से भी राजा सब प्राणियों को दुःख देने वाले साहसिक मनुष्य को बंधन छेदन किये बिना कभी छोड़े।

चाहे गुरु हो, चाहें पुत्रादि बालक हों, चाहे पिता आदि वृद्ध, चाहे ब्राह्मण और चाहे बहुत शास्त्रों का श्रोता क्यों न हो जो धर्म को छोड़ अधर्म में वर्तमान, दूसरे को विना अपराध मारनेवाले हैं उनको विना विचारे मार डालना अर्थात मार के पश्चात विचार करना चाहिये।

दुष्ट पुरुषों के मारने में हन्ता को पाप नहीं होता, चाहे प्रसिद्ध मारे चाहे अप्रसिद्ध, क्योंकि क्रोधी को क्रोध से मारना जानो क्रोध से क्रोध की लड़ाई है।

जिस राजा के राज्य में न चोर, न परस्त्रीगामी, न दुष्ट वचन का बोलनेहारा, न साहसिक डाकू और न दण्डध्न अर्थात् राजा की आज्ञा का भंग करनेवाला है वह राजा अतीव श्रेष्ठ है।

जो स्त्री अपनी जाति गुण के घमण्ड से पति को छोड़ व्यभिचार करे उस को बहुत-बहुत स्त्री और पुरुषों के सामने जीती हुई कुत्तों से राजा कटवा कर मरवा डाले।

उसी प्रकार अपनी स्त्री को छोड़ के परस्त्री वा वेश्यागमन करे उस पापी को लोहे के पलंग को अग्नि से तपा के लाल कर उस पर सुला के जीते को बहुत पुरुषों के सम्मुख भस्म कर देवे।

(प्रश्न) जो राजा व रानी अथवा न्यायाधीश वा उस की स्त्री व्यभिचारादि कुकर्म करे तो उस को कौन दण्ड देवे ?

(उत्तर) सभा, अर्थात् उनको तो प्रजापुरुषों से भी अधिक दण्ड होना चाहिये।

(प्रश्न) राजादि उन से दण्ड क्यों ग्रहण करेंगे ?

(उत्तर) राजा भी एक पुण्यात्मा भाग्यशाली मनुष्य है। जब उसी को दण्ड न दिया जाय और वह दण्ड ग्रहण न करे तो दूसरे मनुष्य दण्ड को क्यों मानेंगे ? और जब सब प्रजा और प्रधान राज्याधिकारी और सभा धार्मिकता से दण्ड देना चाहें तो अकेला राजा क्या कर सकता है? जो ऐसी व्यवस्था न हो तो राजा प्रधान और सब समर्थ पुरुष अन्याय में डूब कर न्याय धर्म को डुबा के सब प्रजा का नाश कर आप भी नष्ट हो जायें, अर्थात् उस श्लोक के अर्थ का स्मरण करो कि न्याययुक्त दण्ड ही का नाम राजा और धर्म है जो उसका लोप करता है उससे नीच पुरुष दूसरा कौन होगा ?

(प्रश्न) यह कड़ा दण्ड होना उचित नहीं, क्योंकि मनुष्य किसी अङ्ग का बनानेहारा वा जिलानेवाला नहीं है, इसलिये ऐसा दण्ड न देना चाहिये ?

(उत्तर) जो इसको कड़ा दण्ड जानते हैं वे राजनीति को नहीं समझते, क्योंकि एक पुरुष को इस प्रकार दण्ड होने से सब लोग बुरे काम करने से अलग रहेंगे और बुरे काम को छोड़कर धर्ममार्ग में स्थित रहेंगे। सच पूछो तो यही है कि एक राईभर भी यह दण्ड सब के भाग में न आवेगा । और जो सुगम दंड दिया जाय तो दुष्ट काम बहुत बढ़कर होने लगेंगे। वह जिसको तुम सुगम दंड कहते हो वह क्रोड़ों गुणा अधिक होने से क्रोड़ों गुणा कठिन होता है क्योंकि जब बहुत मनुष्य दुष्ट कर्म करेंगे तव थोड़ा-थोड़ा दंड भी देना पड़ेगा अर्थात् जैसे एक को मन भर दंड हुआ और दूसरे को पाव मर तो पाव भर अधिक एक मन दंड होता है तो प्रत्येक मनुष्य के भाग में आध पाव बीस सैर दंड पड़ा, तो ऐसे सुगम दंड को दुष्ट लोग क्या समझते हैं ? जैसे एक को मन और सहस्र मनुष्यों को पाव-पाव दंड हुआ तो सवा छः मन मनुष्य जाति पर दंड होने से अधिक और यही कड़ा तथा वह एक मन दंड न्यून और सुगम होता है।

इस पर भी ध्यान रखना चाहिये कि 'यथा राजा तथा प्रजा' जैसा राजा होता है वैसी ही उसकी प्रजा होती है। इसलिये राजा और राजपुरुषों को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करें किन्तु सब दिन धर्म न्याय से वर्त्तकर सब के सुधार का दृष्टान्त बनें।

★★★★★

सातवां समुल्लास

ईश्वर, जीव और वेद विषय

(प्रश्न) वेद में ईश्वर अनेक है इस बात को तुम मानते हो या नहीं ?

(उत्तर) नहीं मानते, क्योंकि चारों वेदों में ऐसा कहीं नहीं लिखा जिससे अनेक ईश्वर सिद्ध हों, किन्तु यह तो लिखा है कि ईश्वर एक है।

(प्रश्न) वेदों में जो अनेक देवता लिखे हैं उसका क्या है?

(उत्तर) देव दिव्य गुणों से युक्त होने के कारण कहाते हैं जैसी कि पृथिवी, परन्तु इसको कहीं ईश्वर या उपासनीय नहीं माना है। यह उनकी भूल है जो देवता शब्द से ईश्वर का ग्रहण करते हैं। परमेश्वर देवों का देव होने से महादेव इसी लिये कहता है कि वही सब जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकर्त्ता, न्यायाधीश, अधिष्ठाता है।

तेंतीस देव अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्र सब सृष्टि के निवास स्थान होने से आठ वसु। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और जीवात्मा ये ग्यारह रुद्र इसलिये कहाते हैं कि जब शरीर को छोड़ते हैं तब रोदन कराने वाले होते हैं। संवत्सर के बारह महीने बारह आदित्य इसलिये हैं कि ये सब की आयु को लेते जाते हैं। बिजली का नाम इन्द्र इस हेतु से है कि परम ऐश्वर्य का हेतु है। यज्ञ को प्रजापति कहने का कारण यह है कि जिससे वायु वृष्टि जल ओषधी की शुद्धि, विद्वानों का सत्कार और नाना प्रकार की शिल्पविद्या से प्रजा का पालन होता है। ये तैंतीस पूर्वोक्त गुणों के योग से देव कहाते हैं।

ईशा वास्यमिदं सर्व यत्किञ्च जगत्याञ्जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।। (यजुर्वेद 40, 1)

अर्थ - है मनुष्य! जो कुछ इस संसार में जगत् है उस सब में व्याप्त होकर नियन्ता है वह ईश्वर कहाता है। उससे डर कर तू अन्याय से किसी के धन की आकांक्षा मत कर। उस अन्याय के त्याग और न्यायाचरणरूप धर्म से अपने आत्मा से आनन्द को भोग।

जब आत्मा मन और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता वा चोरी आदि बुरी वा परोपकार आदि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है, उस समय जीव की इच्छा, ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जाता है। उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, शङ्का और

लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय, निःशङ्कता और आनन्दोत्साह उठता है। वह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है।

(प्रश्न) ईश्वर व्यापक है या किसी देशविशेष में रहता है ?

(उत्तर) व्यापक है, क्योंकि जो एक देश में रहता तो सर्वान्तर्यामी सर्व सर्वनियन्ता सब का स्रष्टा, सब का धर्ता और प्रलयकर्तृता नहीं हो सकता। अप्राप्त देश में कर्ता की क्रिया का असम्भव है।

(प्रश्न) परमेश्वर दयालु और न्यायकारी है या नहीं ?

(उत्तर) न्याय और दया का नाममात्र ही भेद है क्योंकि जो न्याय से प्रयोजन सिद्ध होता है वही दया से। दण्ड देने का प्रयोजन है कि मनुष्य अपराध करने से बन्ध होकर दुःखों को प्राप्त न हों वही दया कहाती है जो पराये दुःखों का छुड़ाना। जिसने जितना बुरा कर्म किया हो उसको उतना ही दण्ड देना चाहिये, उसी का नाम न्याय है। और जो अपराधी को दण्ड न दिया जाय तो दया का नाश हो जाय। क्योंकि एक अपराधी डाकू को छोड़ देने से सहस्रों धर्मात्मा पुरुषों को दुःख देता है। जब एक के छोड़ने में सहस्रों मनुष्यों को दुःख प्राप्त होता है वह दया किस प्रकार हो सकती है ? दया वही है कि उस डाकू को कारागार में रखकर पाप करने से बचाना डाकू पर और उस डाकू को मार देने से अन्य सहस्रों मनुष्यों पर दया प्रकाशित होती है।

(प्रश्न) ईश्वर साकार है वा निराकार ?

(उत्तर) निराकार। क्योंकि जो साकार होता तो व्यापक नहीं हो सकता। जब व्यापक न होता तो सर्वज्ञादि गुण मी ईश्वर में न घट सकते।

(प्रश्न) ईश्वर सर्वशक्तिमान है या नहीं ?

(उत्तर) है। परन्तु जैसा तुम सर्वशक्तिमान शब्द का अर्व जानते हो वैसा नहीं किन्तु शक्तिमान् शब्द का यही अर्थ है कि ईश्वर अपने काम अर्थात् उत्पत्ति, पालन, प्रलय आदि और सब जीवों के पुण्य पाप की यथायोग्य व्यवस्था करने में किंचित भी किसी की सहायता नहीं लेता अर्थात् अपने अनन्त सामर्थ्य से ही सब अपना काम पूर्ण कर लेता है।

(प्रश्न) परमेश्वर सादि है वा अनादि ?

(उत्तर) अनादि अर्थात् जिसका आदि कोई कारण वा समय न हो उसको अनादि कहते हैं।

(प्रश्न) परमेश्वर क्या चाहता है ?

(उत्तर) सब की भलाई और सब के लिए सुख चाहता है परन्तु

स्वतन्त्रता के साथ किसी को विना पाप किये पराधीन नहीं करता ।

(प्रश्न) परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए या नहीं ?

(उत्तर) करनी चाहिये ।

(प्रश्न) क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति प्रार्थना करनेवाले का पाप छुड़ा देगा ?

(उत्तर) नहीं।

(प्रश्न) तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना ?

(उत्तर) उनके करने का फल अन्य ही है।

(प्रश्न) क्या है ?

(उत्तर) स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण कर्म स्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना ।

यां मेघां देवगुणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेघाविन कुरु स्वाहा। (यजुर्वेद 32,14)

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्य्यमसि वीर्यं मयि धेहि।

बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि।

मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि (यजुर्वेद 19, 9)

है अग्ने ! अर्थात् प्रकाशस्वरूप परमेश्वर आपकी कृपा से जिस बुद्धि की उपासना विद्वान, ज्ञानी और योगी लोग करते हैं उसी बुद्धि से युक्त हमको इसी वर्तमान समय में बुद्धिमान आप कीजिये।

आप प्रकाशस्वरूप हैं कृपा कर मुझ में भी प्रकाश स्थापन कीजिये। आप अनन्त पराक्रम युक्त हैं इसलिये मुझ में भी कृपाकटाक्ष से पूर्ण पराक्रम धरिये। आप अनन्त बलवुक्त हैं इसलिये मुझ में मी बल धारण कीजिये। आप अनन्त सामर्थ्ययुक्त हैं, मुझ को भी पूर्ण सामर्थ्य दीजिये। आप दुष्ट काम और दुष्टों पर क्रोधकारी हैं, मुझको भी वैसा ही कीजिये। आप निन्दा, स्तुति और स्वअपराधियों का सहन करने वाले हैं, कृपा से मुझ को भी वैसा ही कीजिये।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुननि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम।।
(यजुर्वेद 40,16)

हे सुख के दाता स्वप्रकाशस्वरूप सबको जाननेहारे परमात्मन् ! आप हमको श्रेष्ठ मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञानों को प्राप्त कराइये और जो हम में कुटिल पापाचरणरूप मार्ग है उससे पृथक कीजिये। इसीलिये हम लोग नम्रतापूर्वक आपकी बहुत सी स्तुति करते हैं कि आप हमको पवित्र करें।

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृत गमयेति।

(शतपथ ब्राह्मण)

है परमगुरो परमात्मन् ! आप हमको असत् मार्ग से पृथक कर सन्मार्ग में प्राप्त कीजिये। अविद्यान्धकार को छुड़ा के विद्यारूप सूर्य को प्राप्त कीजिए और मृत्यु रोग से पृथक करके मोक्ष के आनन्दरूप अमृत की प्राप्त कीजिये ।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। (यजुर्वेद 40, 2)

परमेश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्य सौ वर्ष पर्यन्त अर्थात् जब तक जीवे तब तक कर्म करता हुआ जीने की इच्छा करे, आलसी कभी न हो।

जब उपासना करना चाहे तब एकान्त शुद्ध देश में जाकर आसन लगा, प्राणायाम करो बाह्य विषयों से इन्द्रियों की रोक, मन को नाभिप्रदेश में या हृदय, कंठ, नेत्र, शिक्षा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न हो कर संयमी होवें।

इसका फल - जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दुख छूट कर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के कर्म स्वभाव पवित्र हो जाते है इसलिये परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये।

(प्रश्न) ईश्वर अवतार लेता है या नहीं ?

(उत्तर) नहीं, क्योंकि 'अज एकपात्', 'स पर्यगाच्छुक्रमकायम् ये यजुर्वेद के वचन हैं। इत्यादिवचनों से परमेश्वर जन्म नहीं लेता।

प्रश्न- यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। (गीता)

श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि जब-जब धर्म का लोप होता है तब-तब मैं शरीर धारण करता हूँ।

(उत्तर) यह बात वेदविरुद्ध होने से प्रमाण नहीं और ऐसा हो सकता

है कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा और धर्म की रक्षा करना चाहते थे कि मैं युग-युग में जन्म लेके श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूं तो कुछ दोष नहीं। क्योंकि 'परोपकाराय सतां विभूतयः' परोपकार के लिए सत्पुरुषों का तन, मन, धन होता है तथापि इससे श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते।

(प्रश्न) जो ईश्वर अवतार न लेवे तो कंस रावणादि दुष्टों का नाश कैसे हो सके?

(उत्तर) प्रथम तो जो जन्मा है वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है। जो ईश्वर अवतार शरीर धारण किये विना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता है उसके सामने कंस और रावणादि एक कीड़ी के समान भी नहीं। वह सर्वव्यापक होने से कंस रावणादि के शरीर में मी परिपूर्ण हो रहा है। जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है।

(प्रश्न) ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है या नहीं ?

(उत्तर) नहीं। क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जाय और सब मनुष्य महापापी हो जायें। क्योंकि क्षमा की बात सुन ही के उनको पाप करने में निर्भयता और उत्साह हो जाये। ।

(प्रश्न) जीव स्वतन्त्र है वा परतन्त्र ?

(उत्तर) अपने कर्तव्य कर्मों में स्वतन्त्र और ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र है।

(प्रश्न) जीव और ईश्वर का स्वरूप, गुण, कर्म और स्वभाव कैसा है ?

(उत्तर) दोनों चेतनस्वरूप हैं। स्वभाव दोनों का पवित्र, अविनाशी और धार्मिकता आदि है। परन्तु परमेश्वर के सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, सब को नियम में रखना, जीवों को पाप पुण्यों के फल देना आदि धर्मयुक्त कर्म हैं। और जीव के सन्तानोत्पत्ति उनका पालन, शिल्पविद्या आदि अच्छे बुरे कर्म हैं। ईश्वर के नित्यज्ञान, आनन्द, अनन्त बल आदि गुण हैं।

(प्रश्न) परमेश्वर सगुण है या निर्गुण

(उत्तर) दोनों प्रकार है।

(प्रश्न) भला एक मियान में दो तलवार कभी रह सकती हैं ! एक पदार्थ में सगुणता और निर्गुणता कैसे रह सकती है ?

(उत्तर) जैसे जड़ के रूपादि गुण हैं और चेतन के ज्ञानादि गुण जड़ में

नहीं हैं। वैसे चेतन में इच्छादि गुण हैं और रूपादि जड़ के गुण नहीं हैं। इसलिये जो गुणों से सहित वह सगुण और गुणों से रहित वह निर्गुण कहाता है। अपने-अपने स्वाभाविक गुणों से सहित और दूसरे विरोधी के गुणों से रहित होने से सब पदार्थ, सगुण और निर्गुण हैं। कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है कि जिसमें केवल निगुणता या केवल सगुणता हो किन्तु एक ही में सगुणता और निर्गुणता सदा रहती है। वैसे ही परमेश्वर अपने अनन्त ज्ञान बलादि गुणों से सहित होने से सगुण और रूपादि जड़ के तथा द्वेषादि जीव के गुणों से पृथक होने से निर्गुण कहाता है।

(प्रश्न) परमेश्वर को आप निराकार मानते हो वा साकार ?

(उत्तर) निराकार मानते हैं।

(प्रश्न) जब निराकार है तो वेदविद्या का उपदेश विना मुख के वर्णोच्चारण कैसे हो सका होगा ? क्योंकि वणों के उच्चारण में तालु अदि स्थान, जिह्वा का प्रयत्न अवश्य होना चाहिये।

(उत्तर) परमेश्वर के सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक होने से जीवों को अपनी व्याप्ति से वेदविद्या के उपदेश करने में कुछ मी मुखादि की अपेक्षा नहीं है। क्योंकि मुख जिह्वा से वर्णोच्चारण अपने से भिन्न को बोध होने के लिये किया जाता है कुछ अपने लिये नहीं।

(प्रश्न) किनके आत्मा में कब वेदों का प्रकाश किया ?

प्रथम सृष्टि की आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा इन ऋषियों के आत्मा में एक-एक वेद का प्रकाश किया।

(प्रश्न) उन चारों ही में वेदों का प्रकाश किया अन्य में नहीं। इससे ईश्वर पक्षपाती होता है।

(उत्तर) वे ही चार सब जीवों से अधिक पवित्रात्मा थे। अन्य उनके सदृश नहीं थे। इसलिये पवित्र विद्या का प्रकाश उन्हीं में किया ।

(प्रश्न) किसी देश भाषा में प्रकाश न करके संस्कृत में क्यों किया ?

(उत्तर) जो किसी देश भाषा का प्रकाश करता तो ईश्वर पक्षपाती हो जाता। क्योंकि जिस देश की भाषा में प्रकाश करता उनको सुगमता और विदेशियों को कठिनता वेदों के पढ़ने पढ़ाने की होती। इसलिये संस्कृत ही में प्रकाश किया, जो किसी देश की भाषा नहीं और वेदभाषा अन्य सब भाषाओं का कारण है। उसी में वेदों का प्रकाश किया। जैसे ईश्वर की पृथिवी आदि सृष्टि सब देश और देशवालों के लिये एकसी और सब शिल्पविद्या का कारण

है। वैसे परमेश्वर की विद्या की भाषा भी एक्सी होनी चाहिये कि सब देशवालों को पढ़ने पढ़ाने में तुल्य परिश्रम होने से ईश्वर पक्षपाती नहीं होता। और सब भाषाओं का कारण भी है।

(प्रश्न) वेद ईश्वरकृत हैं अन्यकृत नहीं। इसमें क्या प्रमाण ?

(उत्तर) जैसा ईश्वर पवित्र, सर्वविद्यावित, शुद्धगुणकर्मस्वभाव, न्यायकारी, दयालु आदि गुण वाला है वैसे जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल कथन हो वह ईश्वरकृत अन्य नहीं। और जिसमें सृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि प्रमाण आप्तों के और पवित्रात्मा के व्यवहार से विरुद्ध कथन न हो वह ईश्वरोक्त ।

(प्रश्न) वेद की ईश्वर से होने की आवश्यकता कुछ भी नहीं। क्योंकि मनुष्य लोग क्रमशः ज्ञान बढ़ाते जाकर पश्चात् पुस्तक भी बना लेंगे ।

(उत्तर) कभी नहीं बना सकते। क्योंकि विना कारण के कार्योत्पत्ति का होना असम्भव है। जैसे जङ्गली मनुष्य सृष्टि को देख कर भी विद्वान् नहीं होते और जब उनको कोई शिक्षक मिल जाय तो विद्वान् हो जाते हैं और अब भी किसी से पढ़े विना कोई भी विद्वान् नहीं होता। इस प्रकार जो परमात्मा उन आदिसृष्टि के ऋषियों को वेदविद्या न पढ़ाता और वे अन्य को न पढाते तो सब लोग अविद्वान् ही रह जाते ।

(प्रश्न) वेदों की कितनी शाखा हैं?

(उत्तर) एक हजार एक सौ सत्ताईस।

(प्रश्न) शाखा क्या कहाती हैं?

(उत्तर) व्याख्यान को शाखा कहते हैं।

(प्रश्न) वेद नित्य हैं वा अनित्य ?

(उत्तर) नित्य हैं। क्योंकि परमेश्वर के नित्य होने से उसके ज्ञानादि गुण भी नित्य है। जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म, स्वभाव नित्य और अनित्य द्रव्य के अनित्य होते हैं।

(प्रश्न) क्या यह पुस्तक मी नित्य है ?

(उत्तर) नहीं। क्योंकि पुस्तक तो पत्रे और स्याही का बना है वह नित्य कैसे हो सकता है? किन्तु जो शब्द अर्थ और सम्बन्ध हैं वे नित्य हैं ?

★★★★★

आठवां समुल्लास

सृष्टि उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय विषय

हे मनुष्य ! जिससे यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है जो धारण और प्रलय कर्तृता है जो इस जगत् का स्वामी जिस व्यापक में यह सब जगत् उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय को प्राप्त होता है सो परमात्मा है। उसको तू जान और दूसरे को सृष्टिकर्तृता मत मान।

यह सब जगत् सृष्टि से पहिले अन्धकार से आवृत्त, रात्रिरूप में जानने के अयोग्य, आकाश रूप सब जगत् तथा तुच्छ अर्थात् अनन्त परमेश्वर के सम्मुख एकदेशी आच्छादित था। पश्चात् परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से कारणरूप से कार्यरूप कर दिया।

हे मनुष्यो ! जो सब सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों का आधार और जो यह जगत् हुआ है और होगा उसका एक अद्वितीय पति परमात्मा इस जगत् की उत्पत्ति के पूर्व विद्यमान था। और जिसने पृथिवी से लेके सूर्यपर्यन्त जगत् को उत्पन्न किया है उस परमात्मा देव की प्रेम से भक्ति किया करें।

(प्रश्न) यह जगत् परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है वा अन्य से ?

(उत्तर) निमित्त कारण परमात्मा से उत्पन्न हुआ हैं परन्तु इसका उपादान कारण प्रकृति है।

(प्रश्न) क्या प्रकृति परमेश्वर ने उत्पन्न नहीं की ?

(उत्तर) नहीं। वह अनादि है।

(प्रश्न) अनादि किसको कहते और कितने पदार्थ अनादि हैं ?

(उत्तर) ईश्वर, जीव और जगत् का कारण ये तीन अनादि हैं।

प्रकृति, जीव और परमात्मा तीनों अज अर्थात् जिनका जन्म कभी नहीं होता और न कभी ये जन्म लेते अर्थात् ये तीन सब जगत् के कारण हैं। इनका कारण कोई नहीं। इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फंसता है और उसमें परमात्मा न फसता और न उसका भोग करता है।

जैसे शरीर के अङ्ग जब तक शरीर के साथ रहते हैं तब तक काम के और अलग होने से निकम्मे हो जाते हैं, वैसे ही प्रकरणस्थ वाक्य सार्थक और प्रकरण से अलग करने वा किसी अन्य के साथ जोड़ने से अनर्थक हो जाते हैं।

(प्रश्न) जगत के कारण कितने है ?

उत्तर- तीन, एक - निमित्त कारण - ईश्वर और जीव, ईश्वर संसार

को बनाता है और चलाता है। जीव संसार के पदार्थों से बनाता और बिगाड़ता है। दूसरा - उपादान - प्रकृति - जिससे संसार के पदार्थ बनते हैं - पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, सभी प्राणियों के शरीर आदि। तीसरा - साधारण कारण - ज्ञान, बल, हाथ, समय आदि।

यह सब जगत् सृष्टि के पहिले प्रलय में अन्धकार से आवृत्त प्राच्छादित था प्रलयारम्भ के पश्चात् भी वैसा ही होता है। उस समय न किसी के जानने, न तर्क में लाने और न प्रसिद्ध चिन्हों से युक्त इन्द्रियों से जानने योग्य था और न होगा।

(प्रश्न) जगत के बनाने में परमेश्वर का क्या प्रयोजन है?

जो तुम से कोई पूछे कि आंख के होने में क्या प्रयोजन है? तुम यही कहोगे देखना तो जो ईश्वर में जगत् की रचना करने का विज्ञान, बल और क्रिया है उसका क्या प्रयोजन, बिना जगत की उत्पत्ति करने के? दूसरा कुछ भी न कह सकोगे और परमात्मा के न्याय, धारणा, दया आदि गुण भी तभी सार्थक हो सकते हैं जब जगत् को बनाये। उसका अनन्त सामर्थ्य जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय और व्यवस्था करने ही से सफल है। जैसे नेत्र का स्वाभाविक गुण देखना है वैसे परमेश्वर का स्वाभाविक गुण जगत् की उत्पत्ति करके सब जीवों को असंख्य पदार्थ देकर परोपकार करना है।

(प्रश्न) बीज पहले है वा वृक्ष ?

(उत्तर) बीज। क्योंकि बीज, हेतु, निदान, निमित्त और कारण इत्यादि शब्द एकार्थवाचक हैं। कारण का नाम बीज होने से कार्य के प्रथम ही होता है।

(प्रश्न) इस जगत् का कर्ता न था, न है और न होगा किन्तु अनादि काल से यह जैसा का वैसा बना है। न कि कभी इसकी उत्पत्ति हुई, न कभी विनाश होगा।

(उत्तर) बिना कर्ता के कोई भी क्रिया वा क्रियाजन्य पदार्थ नहीं बन सकता।

(प्रश्न) कल्प कल्पान्तर में ईश्वर सृष्टि विलक्षण - विलक्षण बनाता है अथवा एक सी ?

(उत्तर) जैसे कि अब है वैसी पहले थी और आगे होगी, भेद नहीं करता।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः।। (ऋग्वेद 10, 190, 3)

(धाता) परमेश्वर जैसे पूर्व कल्प में सूर्य, चन्द्र, विद्युत् पृथिवी, अन्तरिक्ष आदि बनाता था वैसे ही अब बनाये हैं और आगे भी वैसे ही बनायेगा।। इसलिये परमेश्वर के काम बिना भूल चूक के होने से सदा एक से ही हुआ करते हैं। जो अल्पज्ञ और जिसका ज्ञान वृद्धि क्षय को प्राप्त होता है उसी के काम में भूल चूक होती है। ईश्वर के काम में नहीं।

जैसे छः पुरुष मिल के एक छप्पर उठा कर भित्तियों पर धरें वैसा ही सृष्टिरूप कार्य की व्याख्या छः शास्त्रकारों ने मिलकर पूरी की है। जैसे पांच अन्धे और एक मन्ददृष्टि को किसी ने हाथी का एक-एक देश बतलाया। उनसे पूछा कि हाथी कैसा है? उनमें से एक ने कहा खंभे, दूसरे ने कहा सूप, तीसरे ने कहा मूसल, चौथे ने कहा भाड़, पांचवें ने कहा चौतरा और छठे ने कहा काला काला चार खंभों के ऊपर कुछ भैंसा सा आकार वाला है।

इसी प्रकार आज कल के अनार्ष नवीन ग्रन्थों के पढ़ने और प्राकृत भाषा वालों ने ऋषि प्रणीत ग्रन्थ न पढ़कर, नवीन क्षुद्रबुद्धिकल्पित संस्कृत और माषाओं के ग्रन्थ पढ़कर एक दूसरे की निन्दा में तत्पर होके झूठा झगड़ा मचाया है। इनका कथन बुद्धिमानों के वा अन्य के मानने योग्य नहीं। क्योंकि जो अन्धों के पीछे अन्धे चलें तो दुःख क्यों न पावें ?

जब कोई किसी पदार्थ को देखता है तो दो प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है। एक जैसा वह पदार्थ है और दूसरा उनमें रचना देखकर बनाने वाले का ज्ञान है। जैसे किसी पुरुष ने सुन्दर आभूषण जंगल में पाया। देखा तो विदित हुआ कि यह सुवर्ण का है और किसी बुद्धिमान कारीगर ने बनाया है। इसी प्रकार यह नाना प्रकार सृष्टि में विविध रचना बनाने वाले परमेश्वर को सिद्ध करती है।

(प्रश्न) मनुष्य की सृष्टि प्रथम हुई वा पृथिवी आदि की ?

(उत्तर) पृथिवी आदि की। क्योंकि पृथिव्यादि के बिना मनुष्य की स्थिति और पालन नहीं हो सकता ।

(प्रश्न) सृष्टि की आदि में एक वा अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे वा क्या ?

(उत्तर) अनेक। क्योंकि जिन जीवों के कर्म ऐश्वरी सृष्टि में उत्पन्न होने के थे उनका जन्म सृष्टि की आदि में ईश्वर देता है। 'ततो मनुष्या अजायन्त' यह यजुर्वेद में लिखा है। इस प्रमाण से यही निश्चय है कि आदि में अनेक अर्थात् सैकड़ों सहस्रों मनुष्य उत्पन्न हुए। और सृष्टि में देखने से भी निश्चित

होता है कि मनुष्य अनेक मा बाप के सन्तान हैं।

(प्रश्न) आदि सृष्टि में मनुष्य आदि की बाल्य, युवा वा वृद्धावस्था में सृष्टि हुई थी अथवा तीनों में ?

(उत्तर) युवावस्था में। क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता तो उनके पालन के लिए दूसरे मनुष्य आवश्यक होते और जो वृद्धावस्था में बनाता तो मैथुनी सृष्टि न होती। इसलिये युवावस्था में सृष्टि की है।

(प्रश्न) कभी सृष्टि का प्रारम्भ है वा नहीं ?

(उत्तर) नहीं। जैसे दिन के पूर्व रात और रात के पूर्व दिन तथा दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन बरावर चला आता है इसी प्रकार सृष्टि के पूर्व प्रलय और प्रलय के पूर्व सृष्टि तथा सृष्टि के पीछे प्रलय और प्रलय के आगे सृष्टि अनादि काल से चक्र चला आता है।

(प्रश्न) ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्य जन्म किन्हीं को सिंहादि क्रूर जन्म किन्हीं को हरिण, गाय आदि पशु किन्हों को वृक्षादि कृमि कीट पतङ्गादि जन्म दिये हैं। इससे परमात्मा में पक्षपात आता है।

(उत्तर) पक्षपात नहीं आता। क्योंकि उन जीवों के पूर्व सृष्टि में किये हुए कर्मानुसार व्यवस्था करने से। जो कर्म के बिना जन्म देता तो पक्षपात आता।

(प्रश्न) मनुष्यों की आदि सृष्टि किस स्थल में हुई ?

(उत्तर) त्रिविष्टप अर्थात् जिसको 'तिब्बत' कहते हैं।

(प्रश्न) आदि सृष्टि में एक जाति थी वा अनेक ?

(उत्तर) एक मनुष्य जाति थी।

श्रेष्ठों का नाम आर्य, विद्वान् देव और दुष्टों के दस्यु अर्थात् डाकू, मूर्ख नाम होने से आर्य और दस्यु दो नाम हुए। आर्यों में पूर्वोक्त प्रकार से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार भेद हुए। द्विज विद्वानों का नाम आर्य और मूर्खों का नाम शूद्र और अनार्य अर्थात अनाड़ी नाम हुआ।

(प्रश्न) फिर वे यहाँ कैसे आये ?

(उत्तर) जब आर्य और दस्युओं में अर्थात् विद्वान् जो देव अविद्वान् जो असुर, उन में सदा लड़ाई बखेड़ा हुआ किया, जब बहुत उपद्रव होने लगा तब आर्य लोग सब भूगोल में उत्तम इस भूमि के खण्ड को जानकर यहीं आकर बसे । इसी से इस देश का नाम 'आर्यावर्त्त' हुआ।

(प्रश्न) प्रथम इस देश का नाम क्या था और इसमें कौन बसते थे ?

(उत्तर) इस के पूर्व इस देश का नाम कोई भी नहीं था और न कोई आर्यों के पूर्व इस देश में बसते थे। क्योंकि आर्य लोग सृष्टि की आदि में कुछ काल के पश्चात् तिब्बत से सूधे इसी देश में आकर बसे थे।

किसी संस्कृत ग्रन्थ में वा इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आये और यहां के जङ्गलियों को लड़कर, जय पाके, निकाल के इस देश के राजा हुए। पुनः विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता है?

(प्रश्न) जगत् की उत्पत्ति में कितना समय व्यतीत हुआ ?

(उत्तर) एक अर्ब, छानवें करोड़, कई लाख और कई सहस्त्र वर्ष जगत की उत्पत्ति और वेदों के प्रकाश होने में हुए हैं। इसका स्पष्ट व्याख्यान मेरी बनाई भूमिका में लिखा है देख लीजिये। इत्यादि प्रकार सृष्टि के बनाने और बनने में हैं और यह भी है कि सबसे सूक्ष्म टुकड़ा अर्थात् जो काटा नहीं जाता उसका नाम परमाणु, साठ परमाणुओं के मिले हुए का नाम अणु, दो अणु का एक द्वयणुक जो स्थूल वायु है तीन द्वयणुक का अग्नि, चार द्वयणुक का जल, पांच द्वयणुक की पृथिवी अर्थात् तीन द्वयणुक का त्रसरेणु और उसका दूना होने से पृथिवी आदि दृश्य पदार्थ होते हैं। इसी प्रकार क्रम से मिला कर भूगोलादि परमात्मा ने बनाये हैं।

सत्येनोत्तभिता भूमिः ।।

यह ऋग्वेद का वचन हैं (सत्य) अर्थात् जो त्रैकाल्याबाध्य जिसका कभी नाश नहीं होता उस परमेश्वर ने भूमि, आदित्य और सब लोकों को धारण किया है।

(प्रश्न) इतने बड़े भूगोलों को परमेश्वर कैसे धारण कर सकता होगा?

(उत्तर) जैसे अनन्त आकाश के सामने बड़े-बड़े भूगोल कुछ भी अर्थात् समुद्र के आगे जल के छोटे कण के तुल्य भी नहीं हैं वैसे अनन्त परमेश्वर के सामने असंख्यात लोक एक परमाणु के तुल्य भी नहीं कह सकते। वह बाहर भीतर सर्वत्र व्यापक होकर सबको धारण कर रहा है।

(प्रश्न) पृथिव्यादि लोक घूमते हैं या स्थिर ?

(उत्तर) घूमते हैं।

(प्रश्न) कितने ही लोग कहते है कि सूर्य घूमता है और पृथिवी नहीं घूमती, दूसरे कहते हैं कि पृथिवी घूमती है सूर्य नहीं घूमता। इसमें सत्य क्या माना जाय ?

(उत्तर) ये दोनों आधे झूठे हैं क्योंकि वेद में लिखा है कि-

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः।।

(यजुर्वेद 3, 6)

अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है। इसलिये भूमि घूमा करती है।

जो लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता और पृथिवी नहीं घूमती है वे सब अज्ञ हैं। क्योंकि जो ऐसा होता तो कई सहस्र वर्ष के दिन और रात होते। अर्थात सूर्य का नाम (ब्रध्नः) पृथिवी से 93 लाख गुना बढ़ा और करोड़ों कोश दूर है। जैसे राई के सामने पहाड़ तो बहुत देर लगती और राई के घूमने में बहुत समय नहीं लगता वैसे ही पृथिवी के घूमने से यथायोग्य दिन रात होता है। सूर्य के घूमने से नहीं।

और जो सूर्य को स्थिर कहते हैं ये भी ज्योतिर्विद्यावित नहीं क्योंकि यदि सूर्य न घूमता होता तो एक राशि स्थान से दूसरी राशि अर्थात् स्थान को प्राप्त न होता और गुरु पदार्थ बिना घूमे आकाश में नियत स्थान पर कभी नहीं रह सकता।

(प्रश्न) जिन वेदों का इस लोक में प्रकाश है उन्हीं का उन लोकों में भी प्रकाश है या नहीं?

(उत्तर) उन्हीं का है। जैसे एक राजा की राज्यव्यवस्था नीति देशों में समान होती है उसी प्रकार परमात्मा राजराजेश्वर की वेदोक्त नीति अपने सृष्टिरूप सब राज्य में एक सी है।

(प्रश्न) जब ये जीव ओर प्रकृतिस्थ तत्त्व अनादि और ईश्वर के बनाये नहीं हैं तो ईश्वर का अधिकार भी इन पर न होना चाहिये क्योंकि सब स्वतन्त्र हुए?

(उत्तर) जैसे राजा और प्रज्ञा समकाल में होते हैं और राजा के आधीन प्रजा होती है वैसे ही परमेश्वर के आधीन जीव और जड़ पदार्थ हैं। जब परमेश्वर सब सृष्टि का बनाने, जीवों के कर्मफलों के देने, सब का यथावत् रक्षक और अनन्त सामर्थ्य वाला है तो अल्प सामर्थ्य भी और जड़ पदार्थ उसके अधीन क्यों न हों? इसलिए जीव कर्म करने में स्वतन्त्र परन्तु कर्मों के फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र है। वैसे ही सर्वशक्तिमान सृष्टि, संहार और पालन सब विश्व का कर्त्ता है।

★★★★★

नौवां समुल्लास

विद्या-अविद्या, बन्ध-मोक्ष विषय

कोई भी मनुष्य क्षणमात्र भी कर्म, उपासना और ज्ञान से रहित नहीं होता। इसलिये धर्मयुक्त सत्यभाषणादि कर्म करना और मिथ्याभाषणादि अधर्म को छोड़ देना ही मुक्ति का साधन है।

(प्रश्न) मुक्ति किसको प्राप्त नहीं होती ?

(उत्तर) जो बद्ध है।

(प्रश्न) बद्ध कौन है ?

(उत्तर) जो अधर्म अज्ञान में फंसा हुआ जीव है। दुखों से छूट जाने का नाम मुक्ति है।

देह और अन्तःकरण जड़ हैं उनको शीतोष्ण प्राप्ति और भोग नहीं है। जैसे पत्थर को शीत और उष्ण का भान वा भोग नहीं है। जो चेतन मनुष्यादि प्राणि उसका स्पर्श करता है उसी को शीत उष्ण का भान और भोग होता है। वैसे प्राण भी जड़ हैं। न उनको भूख न पिपासा किन्तु प्राण वाले जीव को क्षुधा, तृषा लगती है। वैसे ही मन भी जड़ है। न उसको हर्ष न शोक हो सकता है, किन्तु मन से हर्ष शोक दुःख सुख का भोग जीव करता है। जैसे बहिष्करण श्रोत्रादि इन्द्रियों से अच्छे बुरे शब्दादि विषयों का ग्रहण करके जीव सुखी दुःखी होता है वैसे ही अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार से सङ्कल्प, विकल्प, निश्चय, स्मरण और अभिमान का करने वाला दण्ड और मान्य का भागी होता है।

जैसे तलवार से मारने वाला दण्डनीय होता है तलवार नहीं होती वैसे ही देहेन्द्रिय अन्तः करण और प्राणरूप साधनों से अच्छे बुरे कर्मों का कर्ता जीव सुख दुःख का भोक्ता है। जीव कर्मों का साक्षी नहीं, किन्तु कर्ता भोक्ता है। कर्मों का साक्षी तो एक अद्वितीय परमात्मा है। जो कर्म करने वाला जीव है वही कर्मों में लिप्त होता है।

मोक्ष में भौतिक शरीर वा इन्द्रियों के गोलक जीवात्मा के साथ नहीं रहते किन्तु अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं। जब सुनना चाहता है तब श्रोत्र, स्पर्श करना चाहता है तब त्वचा, देखने के सङ्कल्प से चक्षु, स्वाद के अर्थ रसना, गन्ध के लिये प्राण, सङ्कल्प विकल्प करते समय मन, निश्चय करने के लिये बुद्धि, स्मरण करने के लिये चित्त और अहङ्कार के अर्थ

अहङ्काररूप अपनी स्वशक्ति से जीवात्मा मुक्ति में हो जाता है और सङ्कल्पमात्र शरीर होता है जैसे शरीर के आधार रह कर इन्द्रियों के गोलक के द्वारा जीव स्वकार्य करता है वैसे अपनो शक्ति से मुक्ति में सब आनन्द भोग लेता है।

प्रश्न - कितने समय तक जीव, मुक्ति में रहता है?

उत्तर - तैंतालीस लाख बीस सहस्र वर्षों की एक चतुर्युंगी, दो सहस्र चतुर्युगियों का एक अहोरात्र, ऐसे तीस अहोरात्रों का एक महीना, ऐसे बारह महीनों का एक वर्ष, ऐसे शत वर्षों का परान्तकाल होता है। इसको गणित की रीति से यथावत् समझ लीजिए। इतना समय मुक्ति में सुख भोगने का है।

जो मुक्ति चाहे वह जीवनमुक्त अर्थात् जिन मिथ्याभाषणादि पाप कर्मों का फल दुःख है उनको छोड़ सुखरूप फल को देने वाले सत्यभाषणादि धर्माचरण अवश्य करे। जो कोई दुःख को छुड़ाना और सुख को प्राप्त होना चाहें वह अधर्म को छोड़ धर्म अवश्य करे। क्योंकि दुःख का पापाचरण और सुख का धर्माचरण मूल कारण है।

(प्रश्न) जन्म एक है वा अनेक ?

(उत्तर) अनेक ।

(प्रश्न) जो अनेक हों तो पूर्व जन्म और मृत्यु की बातों का स्मरण क्यों नहीं ?

(उत्तर) जीव अल्पज्ञ है त्रिकालदर्शी नहीं इसलिये स्मरण नहीं रहता। और जिस मन से ज्ञान करता है वह भी एक समय में दो ज्ञान नहीं कर सकता। भला पूर्व जन्म की बात तो दूर रहने दीजिये, इसी देह में जब गर्भ में जीव था, शरीर बना, पश्चात् जन्म पांचवें वर्ष से पूर्व तक जो-जो बातें हुई हैं उनका स्मरण क्यों नहीं कर सकता ? और जागृत वा स्वप्न में बहुत सा व्यवहार प्रत्यक्ष में करके जब सुषुप्ति अर्थात् गाढ़ निद्रा होती है तब जागृत आदि व्यवहार का स्मरण क्यों नहीं कर सकता ? और तुम से कोई पूछे कि बारह वर्ष के पूर्व तेरहवें वर्ष के पांचवें महीने के नवमें दिन दस बजे पर पहिली मिनट में तुमने क्या किया था? तुम्हारा मुख, हाथ, कान, नेत्र, शरीर किस ओर किस प्रकार का था ? और मन में क्या विचार था ? जब इसी शरीर में ऐसा है तो पूर्व जन्म की बातों के स्मरण में शङ्का करनी केवल लड़कपने की बात है।

और जो स्मरण नहीं होता है इसी से जीव सुखी है। नहीं तो सब

जन्मों के दुःखों को देख-देख दुःखित होकर मर जाता। जो कोई पूर्व और पीछे जन्म के वर्तमान को जानना चाहे तो भी नहीं जान सकता क्योंकि जीव का ज्ञान और स्वरूप अल्प है। यह बात ईश्वर के जानने योग्य है, जीव के नहीं।

(प्रश्न) जव जीव को पूर्व का ज्ञान नहीं और ईश्वर इसको दण्ड देता है तो जीव का सुधार नहीं हो सकता क्योंकि जब उसको ज्ञान हो कि हमने अमुक काम किया था उसी का यह फल है। तभी वह पापकर्मों से बच सके ?

(उत्तर) तुम ज्ञान कै प्रकार का मानते हो ?

(प्रश्न) प्रत्यक्षादि प्रमाणों से आठ प्रकार का ।

(उत्तर) तो जब तुम जन्म से लेकर समय-समय में राज, धन, बुद्धि, विद्या, दारिद्रय, निर्बुद्धि, मूर्खता आदि सुख दुःख संसार में देखकर पूर्वजन्म का ज्ञान क्यों नहीं करते ? जैसे एक अवैद्य और एक वैद्य को कोई रोग हो उसका निदान अर्थात् कारण वैद्य जान लेता और अविद्वान् नहीं जान सकता।

(प्रश्न) मनुष्य और अन्य पश्वादि के शरीर में जीव एक सा है या भिन्न-भिन्न जाति के?

(उत्तर) जीव एक से हैं परन्तु पाप-पुण्य के योग से मलिन और पवित्र होते हैं।

(प्रश्न) मनुष्य का जीव पश्वादि में और पश्वादि का मनुष्य के शरीर में और स्त्री का पुरुष के और पुरुष का स्त्री के शरीर में जाता आता है वा नहीं ।

(उत्तर) हां! जाता आता है। क्योंकि जब पाप बढ़ जाता पुण्य न्यून होता है तब मनुष्य का जीव पश्वादि नीच शरीर और जब धर्म अधिक तथा अधर्म न्यून होता है तब देव विद्वानों का शरीर मिलता और जब पुण्य पाप बराबर होता है तब साधारण मनुष्य जन्म होता है। इसमें भी पुण्य पाप के उत्तम, मध्यम और निकृष्ट होने से मनुष्यादि में भी उत्तम, मध्यम, निकृष्ट शरीरादि सामग्री वाले होते हैं। और जब अधिक पाप का फल पश्वादि शरीर में भोग लिया है पुनः पाप पुण्य के तुल्य रहने से मनुष्य शरीर में आता और पुण्य के फल भोग कर फिर भी मध्यस्थ मनुष्य के शरीर में आता है।

पश्चात् धर्मराज अर्थात् परमेश्वर उस जीव के पाप पुण्यानुसार जन्म देता है। वह वायु, अन्न, जल अथवा शरीर के छिद्र द्वारा दूसरे के शरीर में ईश्वर की प्रेरणा से प्रविष्ट होता है। जो प्रविष्ट हो कर क्रमशः वीर्य में जा गर्भ में स्थित हो, शरीर धारण कर बाहर आता है। जो स्त्री के शरीर धारण करने

योग्य कर्म हों तो स्त्री और पुरुष के शरीर धारण करने योग्य कर्म हों तो पुरुष के शरीर में प्रवेश करता है। और नपुंसक गर्भ की स्थिति समय स्त्री पुरुष के शरीर में सम्बन्ध करके रज वीर्य के बराबर होने से होता है।

(प्रश्न) मुक्ति में परमेश्वर में जीव मिल जाता है वा पृथक रहता है ?

(उत्तर) पृथक रहता है। क्योंकि जो मिल जाए तो मुक्ति का सुख कौन भोगे।

जब आत्मा में प्रसन्नता मन प्रसन्न प्रशान्त के सदृश शुद्धमनयुक्त वर्त्तते तब समझना कि सत्त्वगुण प्रधान और रजोगुण तथा तमोगुण अप्रधान हैं।

जब आत्मा और मन दुःखसंयुक्त प्रसन्नतारहित विषय में इधर उधर गमन आगमन में लगे तब समझना कि रजोगुण प्रधान, सत्त्वगुण और तमोगुण अप्रधान हैं।

जब मोह अर्थात् सांसारिक पदार्थों में फंसा हुआ आत्मा और मन हो, जब आत्मा और मन में कुछ विवेक न रहे, विषयों में आसक्त तर्क वितर्क रहित जानने के योग्य न हो, तब निश्चय समझना चाहिये कि इस समय मुझ में तमोगण प्रधान और सत्त्वगुण तथा रजोगुण अप्रधान हैं।

जो वेदों का अभ्यास, धर्मानुष्ठान, ज्ञान की वृद्धि, पवित्रता की इच्छा, इन्द्रियों का निग्रह, धर्म क्रिया और आत्मा का चिन्तन होता है यही सत्त्वगुण का लक्षण है।

जब रजोगुण का उदय, सत्त्व और तमोगुण का अन्तर्भाव होता है तब आरम्भ में रुचिता, धैर्य-त्याग, असत् कर्मों का ग्रहण, निरन्तर विषयों की सेवा में प्रीति होती है तभी समझना कि रजोगुण प्रधानता से मुझ में वर्त्तत रहा है।

जब तमोगुण का उदय और दोनों का अन्तर्भाव होता है तब अत्यन्त लोभ अर्थात् सब पापों का मूल बढ़ता, अत्यन्त आलस्य और निद्रा, धैर्य्य का नाश, क्रूरता का होना, नास्तिक्य अर्थात् वेद और ईश्वर में श्रद्धा का न रहना, भिन्न-भिन्न अन्तःकरण की वृत्ति और एकाग्रता का अभाव किसी से याचना अर्थात मांगना, प्रमाद अर्थात् मद्यपानादि दुष्ट व्यसनों में फंसना होवे तब समझना कि तमोगुण मुझ में बढ़ कर वर्तता है।

जो मनुष्य सात्त्विक हैं वे देव अर्थात् विद्वान, जो रजोगुणी होते हैं वे मध्यम मनुष्य और जो तमोगुणयुक्त होते हैं वे नीच गति को प्राप्त होते हैं ।

जो अत्यन्त तमोगुणी हैं वे स्थावर वृक्षादि, कृमि, कीट, मत्स्य, सर्प,

कच्छप, पशु और मृग के जन्म को प्राप्त होते हैं।

जो मध्यम तमोगुणी हैं वे हाथी, घोड़ा, शूद्र, म्लेच्छ निन्दित कर्म करने हारे सिंह, व्याघ्र, वराह अर्थात् सूकर के जन्म को प्राप्त होते हैं ।

जो उत्तम तमोगुणी हैं वे चारण (जो कि कवित्त दोहा आदि बनाकर मनुष्यों की प्रशंसा करते हैं) सुन्दर पक्षी, दाम्भिक पुरुष अर्थात् अपने मुख से अपनी प्रशंसा करनेहारे, राक्षस जो हिंसक, पिशाच जो अनाचारी अर्थात् मद्यादि के आहारकर्ता और मलिन रहते हैं, वह उत्तम तमोगुण के कर्म का फल है।

जो अत्यन्त रजोगुणी हैं वे भल्ला अर्थात् तलवार आदि से मारने वा कुदार आदि से खोदनेहारे, मल्लाह अर्थात् नौका आदि के चलाने वाले, नट जो बांस आदि पर कला कूदना चढ़ना उतरना आदि करते हैं, शस्त्रधारी नृत्य और मद्य पीने में आसक्त हों, ऐसे जन्म नीच रजोगुण का फल है।

जो मध्यम रजोगुणी होते हैं वे राजा क्षत्रियवर्णस्थ राजाओं के पुरोहित, वादविवाद करने वाले, दूत, प्रांविवाक (वकील बारिष्टर), युद्ध विभाग के अध्यक्ष के जन्म पाते हैं।

जो उत्तम रजोगुणी हैं वे गन्धर्व (गाने वाले) गुह्यक (वादित्र बजानेहारे), यक्ष (धनाढ्य) विद्वानों के सेवक और अप्सरा अर्थात् जो उत्तम रूप वाली स्त्री का जन्म पाते हैं।

जो तपस्वी, यति, संन्यासी, वेदपाठी, विमान के चलाने वाले, ज्योतिषी और दैत्य अर्थात् देहपोषक मनुष्य होते हैं उनको प्रथम सत्त्वगुण के कर्म का फल जानो।

जो मध्यम सत्त्वगुण युक्त होकर कर्म करते हैं वे जीव यज्ञकर्तृता, वेदार्थवित्, विद्वान, वेद, विद्युत् आदि और काल विद्या के ज्ञाता, रक्षक, ज्ञानी और (साध्य) कार्यसिद्धि के लिये सेवन करने योग्य अध्यापक का जन्म पाते हैं।

★★★★★

दसवां समुल्लास

आचार अनाचार भक्ष्य अभक्ष्य विषय

मनुष्यों को सदा इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि जिसका सेवन रागद्वेषरहित विद्वान लोग नित्य करें जिसको हृदय अर्थात् आत्मा से सत्य कर्तृतव्य जानें, वही धर्म माननीय और करणीय है ।

इसलिये सम्पूर्ण वेद, मनुस्मृति तथा ऋषिप्रणीत शास्त्र, सत्पुरुषों का आचार और जिस-जिस कर्म में अपना आत्मा प्रसन्न रहे अर्थात् भय, शंका, लज्जा जिसमें न हो उन कर्मों का सेवन करना उचित है। देखो। जब कोई मिथ्याभाषण, चोरी आदि की इच्छा करता है तभी उसके आत्मा में भय, शंका, लज्जा अवश्य उत्पन्न होती है इसलिये वह कर्म करने योग्य नहीं।

मनुष्य सम्पूर्ण शास्त्र, वेद, सत्पुरुषों का आचार, अपने आत्मा के अविरुद्ध अच्छे प्रकार विचार कर ज्ञाननेत्र करके श्रुति प्रमाण से स्वात्मानुकूल धर्म में प्रवेश करे।

क्योंकि जो मनुष्य वेदोक्त धर्म और जो वेद से अविरुद्ध स्मृत्युक्त धर्म का अनुष्ठान करता है वह इस लोक में कीर्ति और मरके सर्वोत्तम सुख को प्राप्त होता है।

इसलिये वेद, स्मृति, सत्पुरुषों का आचार और अपने आत्मा के ज्ञान से अविरुद्ध प्रियाचरण, ये चार धर्म के लक्षण अर्थात् इन्हीं से धर्म लक्षित होता है ।

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्।।

मनुष्य का यही मुख्य आचार है कि जो इन्द्रियां चित्त को हरण करने वाले विषयों में प्रवृत्त कराती हैं उनको रोकने में प्रयत्न करे। जैसे घोड़ों को सारथि रोक कर शुद्ध मार्ग में चलाता है इस प्रकार इनको अपने वश में करके अधर्ममार्ग से हटा के धर्ममार्ग में सदा चलाया करे।

क्योंकि इन्द्रियों को विषयासक्ति और अधर्म में चलाने से मनुष्य निश्चित दोष को प्राप्त होता है और जब इनको जीत कर धर्म में चलाता है तभी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त होता है।

कभी बिना पूछे वा अन्याय से पूछने वाले को कि जो कपट से पूछता हो उसको उत्तर न देवे। उनके सामने बुद्धिमान् जड़ के समान रहें। हां जो

निष्कपट और जिज्ञासु हो उनको विना पूछे भी उपदेश करे।

एक धन, दूसरे बन्धु कुटुम्ब कुल, तीसरी अवस्था, चौथा उत्तम कर्म और पांचवी श्रेष्ठ विद्या ये पांच मान्य के स्थान हैं। परन्तु धन से उत्तम बन्धु, बन्धु से अधिक अवस्था, अवस्था से श्रेष्ठ कर्म और कर्म से पवित्र विद्या वाले उत्तरोत्तर अधिक माननीय हैं।

क्योंकि चाहे सौ वर्ष का भी हो परन्तु जो विद्या विज्ञानरहित है वह बालक और जो विद्या विज्ञान का दाता है उस बालक को भी वृद्ध मानना चाहिये। क्योंकि सब शास्त्र आप्त विद्वान् अज्ञानी को बालक और ज्ञानी को पिता कहते हैं।

ब्राह्मण ज्ञान से, क्षत्रिय बल से, वैश्य धनधान्य से और शूद्र जन्म अर्थात् अधिक आयु से वृद्ध होता है।

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।।

(तैतिरीय उपनिषद)

माता, पिता, आचार्य और अतिथि की सेवा करना देवपूजा कहती है। और जिस-जिस कर्म से जगत का उपकार हो वह वह कर्म करना और हानिकारक छोड़ देना ही मनुष्य का मुख्य कर्तव्य कर्म है। कभी नास्तिक, लम्पट, विश्वासघाती, चोर, मिथ्यावादी, स्वार्थी, कपटी, छली आदि दृष्ट मनुष्यों का संग न करें। आप्त जो सत्यवादी धर्मात्मा परोपकारप्रिय जन हैं उनका सदा संग करने ही का नाम श्रेष्ठाचार है।

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च। (मनुस्मृति)

जो सत्यभाषणादि कर्मों का आचरण करना है यही वेद और स्मृति में कहा हुआ आचार है।

(प्रश्न) आर्यावर्त्त देशवासियों का आर्यावर्त्त देश से भिन्न-भिन्न देशों में जाने से आचार नष्ट हो जाता है या नहीं?

(उत्तर) यह बात मिथ्या है। क्योंकि जो बाहर भीतर की पवित्रता करनी, सत्यभाषणादि आचरण करना है वह जहाँ कहीं करेगा आचार और धर्मभ्रष्ट कभी न होगा। और जो आर्यावर्त्त में रह कर भी दुष्टाचार करेगा वही धर्म और आचारभ्रष्ट कहावेगा।

हां, इतना अवश्य चाहिये कि मद्यमांस का ग्रहण कदापि भूल कर भी न करें। क्या सब बुद्धिमानों ने यह निश्चय नहीं किया है कि जो राजपुरुषों में युद्ध समय में भी चौका लगा कर रसोई बना के खाना अवश्य पराजय का हेतु

है ? किन्तु क्षत्रिय लोगों का युद्ध में एक हाथ से रोटी खाते जल पीते जाना और दूसरे हाथ से शत्रुओं को घोड़े, हाथी, रथ पर चढ़ वा पैदल होके मारते जाना अपना विजय करना ही आचार और पराजित होना अनाचार है। इसी मूढ़ता से इन लोगों ने चौका लगाते-लगाते विरोध करते कराते सब स्वातन्त्र्य, आनन्द, धन, राज्य, विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगा कर हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं और इच्छा करते हैं कि कुछ पदार्थ मिले तो पका कर खावें। परन्तु वैसा न होने पर जानो सब आर्यावर्त्त देश भर में चौका लगा के सर्वथा नष्ट कर दिया है।

(प्रश्न) द्विज अपने हाथ से रसोई बना के खावें या शूद्र के हाथ की बनाई खावें ?

(उत्तर) शुद्र के हाथ की बनाई खावें क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णस्थ स्त्री पुरुष विद्या पढ़ाने, राज्यपालने और पशुपालन खेती और व्यापार के काम में तत्पर रहें और शूद्र के पात्र तथा उसके घर का पका हुआ अन्न आपत्काल के बिना न खायें। सुनों प्रमाण

आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्तारः स्युः ।

यह आपस्तम्ब का सूत्र है - आर्यों के घर में शूद्र अर्थात् मूर्ख स्त्री पुरुष पाकादि सेवा करें परन्तु वे शरीर वस्त्र आदि से पवित्र रहें। आर्यों के घर में जब रसोई बनायें तब मुख बांध के बनायें, क्योंकि उनके मुख से उच्छिष्ट और निकला हुआ श्वास भी अन्न में न पड़े। आठवें दिन क्षौर और नखच्छेदन करावें स्नान करके पाक बनाया करें। आर्यों को खिला के आप खावें ।

जो-जो बुद्धि का नाश करने वाले पदार्थ हैं उनका सेवन कभी न करें और जितने अन्न सड़े, बिगड़े, दुर्गन्धादि से दूषित, अच्छे प्रकार न बने हुए और मद्यमांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्य के परमाणुओं ही से पूरित है उनके हाथ का न खावें।

जिसमें उपकारक प्राणियों की हिंसा अर्थात् जैसे एक गाय के शरीर से दूध, घी, बैल, गाय उत्पन्न होने से एक पीढ़ी में चार लाख पचहत्तर सहस्र छः सौ मनुष्यों को सुख पहुंचता है वैसे पशुओं को न मारें, न मारने दें।

परन्तु गाय के दूध घी से जितने बुद्धिवृद्धि से लाभ होते हैं उतने भैंस के दूध से नहीं। इससे मुख्योपकारक आर्यों ने गाय को गिना है। और जो कोई अन्य विद्वान् होगा वह भी इसी प्रकार समझेगा । बकरी, हाथी, घोड़े, ऊंट,

भेड़, गदहे आदि से भी बड़े उपकार होते हैं। इन पशुओं को मारने वालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाले जानियेगा।

देखो ! जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे, तभी आर्यावर्त्त वा अन्य भूगोल देशों में बड़े आनन्द में मनुष्यादि प्राणी वर्त्ततते थे। क्योंकि दूध, घी, बैल आदि पशुओं की बहुताई होने से अन्न रस पुष्कल प्राप्त होते थे। जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आके गो आदि पशुओं के मारने वाले मद्यपानी राज्याधिकारी हुए हैं तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है।

जितना हिंसा और चोरी विश्वासघात छल, कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है। जिन पदार्थों से स्वास्थ्य रोगनाश बुद्धिबलपराक्रमवृद्धि और आयुवृद्धि होवे उन तण्डुलादि, गोधूम, फल, मूल, कन्द, दूध, घी, मिष्ठानादि पदार्थों का सेवन यथायोग्य पाक मेल करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना सब भक्ष्य कहाता है। जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करने वाले हैं जिस-जिस के लिये जो-जो पदार्थ वैद्यकशास्त्र में वर्जित किये हैं, उन-उन का सर्वथा त्याग करना और जो-जो जिसके लिये विहित है उन उन पदार्थों का ग्रहण करना यह भी भक्ष्य है।

(प्रश्न) एक साथ खाने में कुछ दोष है या नहीं ?

(उत्तर) दोष है। क्योंकि एक के साथ दूसरे का स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती। जैसे कुष्ठी आदि के साथ खाने से अच्छे मनुष्य का भी रुधिर बिगड़ जाता है वैसे दूसरे के साथ खाने में भी कुछ बिगाड़ ही होता है। सुधार नहीं। इसीलिये-

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा ।
न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत्।। (मनुस्मृति)

न किसी को अपना जूठा पदार्थ दे और न किसी के भोजन के बीच आप खावे। न अधिक भोजन करे और न भोजन किये पश्चात् हाथ मुख धोये बिना कहीं इधर-उधर जाय।

(प्रश्न) भला स्त्री पुरुष भी परस्पर उच्छिष्ट न खायें ?

(उत्तर) नहीं। क्योंकि उनके भी शरीरों का स्वभाव भिन्न-भिन्न है।

(प्रश्न) क्या अपने ही हाथ का खाना और दूसरे के हाथ का नहीं ?

(उत्तर) जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्यों के साथ खाने में कुछ भी हानि नहीं।

देखो! महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भूगोल के राजा, ऋषि महर्षि आये थे। एक ही पाकशाला से भोजन किया करते थे। जब से ईसाई मुसलमान आदि के मतमतान्तर चले आपस मैं वैर विरोध हुआ उन्होंने मद्यपान गोमांसादि का खाना पीना स्वीकार किया उसी समय से भोजनादि में बखेड़ा हो गया।

देखो ! काबुल, कंधार, ईरान, अमेरिका, यूरोप आदि देशों के राजाओं की कन्या गान्धारी, माद्री, उलोपी आदि के साथ आर्यावर्त्तदेशीय राजा लोग विवाह आदि व्यवहार करते थे। शकुनि आदि, कौरव पांडवों के साथ खाते पीते थे। कुछ विरोध नहीं करते थे। क्योंकि उस समय सर्व भूगोल में वेदोक्त एक मत था। उसी में सब की निष्ठा थी और एक दूसरे का सुख-दुःख हानि लाभ आपस में अपने समान समझते थे। तभी भूगोल में सुख था। अब तो बहुत से मत वाले होने से बहुत सा दुःख और विरोध बढ़ गया है। इसका निवारण करना बुद्धिमानों का काम है।

परमात्मा सब के मन में सत्य मत का ऐसा अंकुर डाले कि जिससे मिथ्या मत शीघ्र ही प्रलय को प्राप्त हों। इसमें सब विद्वान् लोग विचार कर विरोधभाव छोड़ के अविरुद्धमत के स्वीकार से सब जने मिल कर सब के आनन्द को बढ़ावें। यह थोड़ा सा आचार अनाचार भक्ष्याभक्ष्य विषय में लिखा।

★★★★★

ग्यारहवां समुल्लास

आर्यावर्त्तीय मत खण्डन मण्डन विषय

अब आर्य्य लोगों के जो आर्यावर्त्त देश में वसने वाले हैं उनके मत का खण्डन तथा मण्डन का विधान करेंगे। यह आर्य्यावर्त्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। इसीलिये इस भूमि का नाम सुवर्णभूमि है क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। इसीलिये सृष्टि की आदि में आर्य लोग इसी देश में आकर वसे। आर्यावर्त्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लोहेरूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः । मनुस्मृति

सृष्टि से ले के पांच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था। अन्य देश में माण्डलिक अर्थात् छोटे-छोटे राजा रहते थे।

(प्रश्न) जो आग्नेयास्त्र आदि विद्या लिखी हैं वे सत्य हैं वा नहीं ? और तोप तथा बन्दूक तो उस समय में थीं वा नहीं?

(उत्तर) यह बात सच्ची है। ये शस्त्र भी थे, क्योंकि पदार्थविद्या से इन सब बातों का सम्भव है।

(प्रश्न) क्या ये देवताओं के मन्त्रों से सिद्ध होते थे ?

(उत्तर) नहीं। ये सब बातें जिनसे अस्त्र शस्त्रों को सिद्ध करते थे वे 'मन्त्र' अर्थात् विचार सिद्ध करते और चलाते थे।

जितनी विद्या भूगोल में फैली है वह सब आर्य्यावर्त देश से मिश्र वालों, उनसे यूनानी, उनसे रूम और उनसे यूरोप देश में, उनसे अमेरिका आदि देशों में फैली है। अब तक जितना प्रचार संस्कृत विद्या का आर्यावर्त देश में है उतना किसी अन्य देश में नहीं। जो लोग कहते हैं कि जर्मनी देश में संस्कृत विद्या का बहुत प्रचार है और जितना संस्कृत मोक्षमूलर साहब पढ़े हैं उतना कोई नहीं पढ़ा यह बात कहने मात्र है क्योंकि 'यस्मिन्देशे द्रुमो नास्ति तत्रैरण्डो द्रुमायते' अर्थात् जिस देश में कोई वृक्ष नहीं होता उस देश में एरंड ही को बड़ा वृक्ष मान लेते हैं। वैसे ही यूरोप देश में संस्कृत विद्या का प्रचार न होने से जर्मन लोगों और मोक्षमूलर साहब ने थोड़ा सा पढ़ा वही उस देश के

लिये अधिक है। परन्तु आर्यावर्त देश की ओर देखें तो उनकी बहुत न्यून गणना है।

जो गुण, कर्म, स्वभाव से ब्राह्मणादि वर्णव्यवस्था थी उसको नष्ट कर जन्म पर रक्खी और मृतकपर्यन्त का भी दान यजमानों से लेने लगे। परन्तु जो ब्राह्मण नहीं हों, उनका न ब्राह्मण नाम और न उनकी सेवा करनी योग्य है।

(प्रश्न) तो हम कौन हैं ?

(उत्तर) तुम पोप हो ।

(प्रश्न) पोप किसको कहते हैं ?

(उत्तर) उसकी सूचना रूमन् भाषा में तो बड़ा और पिता का नाम पोप है परन्तु अब छल कपट से दूसरे को ठग कर अपना प्रयोजन साधने वाले को पोप कहते हैं।

अब देखिये जानो स्वर्ग का ठेका पोप जी ने ही ले लिया हो। जब तक यूरोप देश में मूर्खता थी तभी तक वहां पोप जी की लीला चलती थी परन्तु अब विद्या के होने से पोप जी की झूठी लीला बहुत नहीं चलती किन्तु निर्मूल भी नहीं हुई।

जब ऐसी मूर्खता हुई तब जैसी पोपों की इच्छा हुई वैसा करने लगे। अर्थात् इस विगाड़ के मूल महाभारत युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि उस समय में ऋषि मुनि भी थे तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये। जब सच्चा उपदेश न रहा तब आर्यावर्त में अविद्या फैल कर परस्पर लड़ने झगड़ने लगे।

देखो इन गवर्गण्ड पोपों की लीला जो कि वेदविरुद्ध महा अधर्म के काम हैं उन्हीं को श्रेष्ठ वाममार्गियों ने माना। मद्य, मांस, मीन अर्थात् मच्छी, मुद्रा पूरी कचौरी और बड़े रोटी आदि चर्वण योनि पात्राधार मुद्रा और पांचवां मैथुन अर्थात् पुरुष सब शिव और स्त्री सब पार्वती के समान मान कर समागम करने में वे वाममार्गी दोष नहीं मानते। अर्थात् जिन नीच स्त्रियों को छूना नहीं उनको अतिपवित्र उन्होंने माना है।

वामियों के तन्त्र ग्रन्थों में यह नियम है कि एक माता को छोड़ के किसी स्त्री को भी न छोड़ना चाहिये अर्थात् चाहे कन्या हो वा भगिनी आदि क्यों न हो सब के साथ संगम करना चाहिये ।

(प्रश्न) अश्वमेध, गोमेघ, नरमेध आदि शब्दों का अर्थ क्या है ?

(उत्तर) घोड़े, गाय आदि पशु तथा मनुष्य मार के होम करना कहीं

नहीं लिखा। केवल वाममार्गियों के ग्रन्थों में ऐसा अनर्थ लिखा है। किन्तु यह भी बात वाममार्गियों ने चलाई। और जहाँ-जहाँ लेख है वहाँ-वहाँ भी वाममार्गियों ने प्रक्षेप किया है। देखो ! राजा न्याय धर्म से प्रजा का पालन करे, विद्यादि का देनेहारा यजमान और अग्नि में घी आदि का होम करना अश्वमेध, अन्न, इन्द्रियां, किरण, पृथिवी आदि को पवित्र रखना गोमेध जब मनुष्य मर जाय तब उसके शरीर का विधिपूर्वक दाह करना नरमेध कहाता है।

(प्रश्न) यज्ञकर्त्तृता कहते हैं कि यज्ञ करने से यजमान और पशु स्वर्गगामी तथा होम करके फिर पशु को जीता करते थे। यह बात सच्ची है वा नहीं ?

(उत्तर) नहीं। जो स्वर्ग को जाते हों तो ऐसी बात कहने वाले को मार के होम कर स्वर्ग में पहुंचाना चाहिये वा उसके प्रिय माता, पिता, स्त्री और पुत्रादि को मार होम कर स्वर्ग में क्यों नहीं पहुंचाते? वा वेदी में से पुनः क्यों नहीं जिला लेते हैं ?

जब इन पोपों का ऐसा अनाचार देखा और दूसरा मरे का तर्पण श्राद्धादि करने को देख कर एक महाभयङ्कर वेदादि शास्त्रों का निन्दक बौद्ध वा जैन मत प्रचलित हुआ है। सुनते हैं कि एक इसी देश में गोरखपुर का राजा था। उससे पोपों ने यज्ञ कराया। उसकी प्रिय राणी का समागम घोड़े के साथ कराने से उसके मर जाने पर पश्चात् वैराग्यवान् होकर अपने पुत्र को राज्य दे, साधु हो, पोपों की पोल निकालने लगा। इसी की शाखारूप चारवाक और आभाणक मत भी हुआ था।

जो पशु मार कर अग्नि में होम करने से पशु स्वर्ग को जाता है तो यजमान अपने पिता आदि को मार के स्वर्ग में क्यों नहीं भेजते। जो मरे हुए मनुष्यों की तृप्ति के लिये श्राद्ध और तर्पण होता है तो विदेश में जाने वाले मनुष्य को मार्ग का खर्च खाने पीने के लिये बांधना व्यर्थ है।

बाइस सौ वर्ष हुए कि एक शङ्कराचार्य द्रविडदेशोत्पन्न ब्राह्मण ब्रह्मचर्य से व्याकरणादि सब शास्त्रों को पढ़कर सोचने लगे कि अहह ! सत्य आस्तिक वेद मत का छूटना और जैन नास्तिक मत का चलना बड़ी हानि की बात हुई है इनको किसी प्रकार हटाना चाहिये।

निश्चय हुआ कि उपदेश और शास्त्रार्थ करने से ये लोग हटेंगे। ऐसा विचार कर उज्जैन नगरी में आये। वहां उस समय सुधन्वा राजा था, जो जैनियों के ग्रन्थ और कुछ संस्कृत भी पढ़ा था। वहां जाकर वेद का उपदेश

करने लगे और राजा से मिल कर कहा कि आप संस्कृत और जैनियों के भी ग्रन्थों को पढ़े हो और जैन मत को मानते हो। इसलिये आपको मैं कहता हूं कि जैनियों के पण्डितों के साथ मेरा शास्त्रार्थ कराइये। इस प्रतिज्ञा पर, जी हारे सो जीतने वाले का मत स्वीकार कर ले। और आप भी जीतने वाले का मत स्वीकार कीजियेगा। जब शङ्कराचार्य की यह बात सुनी और बड़ी प्रसन्नता के साथ बोले कि हम शास्त्रार्थ कराके सत्यासत्य का निर्णय अवश्य करावेंगे। जैनियों के पण्डितों को दूर-दूर से बुलाकर सभा कराई।

उसमें शङ्कराचार्य का वेदमत और जैनियों का वेदविरुद्ध मत था अर्थात् शङ्कराचार्य का पक्ष वेदमत का स्थापन और जैनियों का खंडन और जैनियों का पक्ष अपने मत का स्थापन और वेद का खंडन था।

बहुत दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा। परन्तु अन्त में युक्ति और प्रमाण से जैनियों का मत खण्डित और शङ्कराचार्य्य का मत अखण्डित रहा। तब उन जैनियों के पण्डित और सुधन्वा राजा ने वेद मत को स्वीकार कर लिया, जैनमत को छोड़ दिया। पुनः बड़ा हल्ला गुल्ला हुआ और सुधन्वा राजा ने अन्य अपने इष्ट मित्र राजाओं को लिख कर शङ्कराचार्य्य से शास्त्रार्थ कराया। परन्तु जैन का पराजय समय होने से पराजित होते गये।

पश्चात् शंकराचार्य्य के सर्वत्र आर्यावर्त्त देश में घूमने का प्रबन्ध सुधन्वादि राजाओं ने कर दिया और उनकी रक्षा के लिये साथ में नौकर चाकर भी रख दिये।

जब वेदमत का स्थापन हो चुका और विद्या प्रचार करने का विचार करते ही थे। उतने में दो जैन ऊपर से कथनमात्र वेदमत और भीतर से कट्टर जैन अर्थात् कपटमुनि थे शंकराचार्य्य उन पर अति प्रसन्न थे। उन दोनों ने अवसर पाकर शंकराचार्य को ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि उनकी क्षुधा मन्द हो गई। पश्चात् शरीर में फोड़े फुन्सी होकर छः महीने के भीतर शरीर छूट गया।

दक्षिण में शृंगेरी, पूर्व में भूगोवर्धन, उत्तर में जोसी और द्वारिका में सारदामठ बांध कर शंकराचार्य के शिष्य महन्त बन और श्रीमान् होकर आनन्द करने लगे क्योंकि शंकराचार्य के पश्चात् उनके शिष्यों की बड़ी प्रतिष्ठा होने लगी।

शङ्कराचार्य के तीन सौ वर्ष के पश्चात् उज्जैन नगरी में विक्रमादित्य राजा कुछ प्रतापी हुआ। जिसने सब राजाओं के मध्य प्रवृत्त हुई लड़ाई को

मिटा कर शान्ति स्थापन की। तत्पश्चात् भर्तृहरि राजा काव्यादि शास्त्र और अन्य में भी कुछ-कुछ विद्वान् हुआ । उसने वैराग्यवान् होकर राज्य को छोड़ दिया। विक्रमादित्य के पाँच सौ वर्ष के पश्चात् राजा भोज हुआ। उसने थोड़ा सा व्याकरण और काव्यालङ्करादि का इतना प्रचार किया कि जिसके राज्य में कालिदास बकरी चराने वाला भी रघुवंश काव्य का कर्ता हुआ। राजा भोज के पास जो कोई अच्छा श्लोक बना कर ले जाता था उसको बहुत सा धन देते थे और प्रतिष्ठा होती थी। उसके पश्चात् राजाओं और श्रीमानों ने पढ़ना ही छोड़ दिया !

पश्चात् इन वाममार्गी और शैवों ने सम्मति करके भग लिंग का स्थापन किया जिसको जलाधारी और लिंग कहते हैं और उसकी पूजा करने लगे। उन निर्लज्जों को तनिक भी लज्जा न आई कि यह पामरपन का काम हम क्यों करते हैं ? उसी पाषाणादि मूर्ति और भग लिंग की पूजा में सारे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि सिद्धियां मानने लगे।

राजा भोज के राज्य में व्यास जी के नाम से मार्कण्डेय और शिवपुराण किसी ने बना कर खड़ा किया था। उसका समाचार राजा भोज को होने से उन पण्डितों को हस्तच्छेदनादि दण्ड दिया और उनसे कहा कि जो कोई काव्यादि ग्रन्थ बनावे तो अपने नाम से बनावे ऋषि मुनियों के नाम से नहीं। यह बात राजा भोज के बनाये संजीवनी नामक इतिहास में लिखी है कि जो ग्वालियर के राज्य 'भिंड' नामक नगर के तिवाड़ी ब्राह्मणों के घर में है। जिसको लखुना के रावसाहब और उनके गुमाश्ते रामदयाल चौबे जी ने अपनी आंख से देखा है। उसमें स्पष्ट लिखा है कि व्यास जी ने चार सहस्र चार सौ और उनके शिष्यों ने पांच सहस्र छः सौ श्लोकयुक्त अर्थात् सब दश सहस्र श्लोकों के प्रमाण भारत बनाया था। वह महाराजा विक्रमादित्य के समय में बीस सहस्र, महाराज भोज कहते हैं कि मेरे पिता जी के समय में पच्चीस और मेरी आधी उमर में तीस सहस्र श्लोक युक्त महाभारत का पुस्तक मिलता है। जो ऐसे ही बढ़ता चला तो महाभारत का पुस्तक एक ऊंट का बोझा हो जायगा और ऋषि मुनियों के नाम से पुराणादि ग्रन्थ बनावेंगे तो आर्यावर्त्तीय लोग भ्रमजाल में पड़ के वैदिक धर्मविहीन होके भ्रष्ट हो जायेंगे ।

देखो ! देवीभागवत में 'श्री' नामा एक देवी स्त्री जो श्रीपुर की स्वामिनी लिखी है उसी ने सब जगत् को बनाया और ब्रह्मा, विष्णु, महादेव को भी उसी ने रचा। जब उस देवी की इच्छा हुई तब उसने अपना हाथ घिसा।

उससे हाथ में एक छाला हुआ। उसमें से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। उससे देवी ने कहा कि तू मुझ से विवाह कर। ब्रह्मा ने कहा कि तू मेरी माता है मैं तुझ से विवाह नहीं कर सकता। ऐसा सुन कर माता को क्रोध चढ़ा और लड़के को भस्म कर दिया। और फिर हाथ घिस के उसी प्रकार दूसरा लड़का उत्पन्न किया। उसका नाम विष्णु रक्खा। उससे भी उसी प्रकार कहा। उसने न माना तो उसको भी भस्म कर दिया। पुनः उसी प्रकार तीसरे लड़के को उत्पन्न किया। उसका नाम महादेव रक्खा और उससे कहा कि तू मुझ से विवाह कर। महादेव बोला कि मैं तुझ से विवाह नहीं कर सकता। तू दूसरा स्त्री का शरीर धारण कर वैसा ही देवी ने किया। तव महादेव बोला कि यह दो ठिकाने राख सी क्या पड़ी है ? देवी ने कहा कि ये दोनों तेरे भाई हैं। इन्होंने मेरी आज्ञा न मानी इसलिये भस्म कर दिये। महादेव ने कहा कि मैं अकेला क्या करूंगा, इनको जिला दे और दो स्त्री और उत्पन्न कर, तीनों का विवाह तीनों से होगा। ऐसा ही देवी ने किया। फिर तीनों का तीनों के साथ विवाह हुआ। वाह रे। माता से विवाह न किया और बहिन से कर लिया। क्या इसको उचित समझना चाहिये ? पश्चात् इन्द्रादि को उत्पन्न किया। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्र इनको पालकी के उठाने वाले कहार बनाया, इत्यादि गपोड़े लम्बे चौड़े मनमाने लिखे हैं।

जैसी इस देवीभागवत में महादेव, विष्णु और ब्रह्मादि को क्षुद्रता और देवी की बड़ाई लिखी है इसी प्रकार शिवपुराण में देवी आदि की बहुत क्षुद्रता लिखी है। अर्थात् ये सब महादेव के दास और महादेव सब का ईश्वर है। जो रुद्राक्ष अर्थात् एक वृक्ष के फल की गोठली और राख धारण करने से मुक्ति मानते हैं तो राख में लोटनेहारे गदहा आदि पशु और धुंधुंची आदि के धारण करने वाले भील कंजर आदि मुक्ति को जावें और सुअर, कुत्ते, गधा आदि पशु राख में लोटने वालों की मुक्ति क्यों नहीं होती ?

जो रुद्राक्ष मस्म धारण से यमराज के दूत डरते हैं तो पुलिस के सिपाही भी डरते होंगे !! जब रुद्राक्ष भस्म धारण करने वालों से कुत्ता, सिंह, सर्प, बिच्छू, मक्खी और मच्छर आदि भी नहीं डरते तो न्यायाधीश के गण क्यों डरेंगे ?

एक किसी वैरागी के दो चेले थे। वे प्रतिदिन गुरु के पग दावा करते थे। एक ने दाहिने पग और दूसरे ने बायें पग की सेवा करनी बांट ली थी। एक दिन ऐसा हुआ कि एक चेला कहीं बजार हाट को चला गया और दूसरा अपने

सेव्य पग की सेवा कर रहा था। इतने में गुरु जी ने करवट फेरा तो उसके पग पर दूसरे गुरुभाई का सेव्य पग पड़ा। उसने ले डंडा पग पर धर मारा। गुरु ने कहा कि अरे दुष्ट ! तू ने यह क्या किया ? चेला बोला कि मेरे सेव्य पग के ऊपर यह पग क्यों आ चढ़ा ? इतने में दूसरा चेला जो कि बजार हाट को गया था आ पहुंचा। वह भी अपने सेव्य पग की सेवा करने लगा। देखा तो पग सूजा पड़ा है। बोला कि गुरु जी ! यह मेरे सेव्य पग में क्या हुआ ? गुरु ने सब वृत्तान्त सुना दिया। वह भी मूर्ख न बोला न चाला, चुपचाप डण्डा उठा के बड़े बल से गुरु के दूसरे पग में मारा। तो गुरु ने उच्चस्वर से पुकार मचाई तब तो दोनों चेले डण्डा लेके पड़े और गुरु के पगों को पीटने लगे। तब तो बड़ा कोलाहल मचा और लोग सुन कर आये । कहने लगे कि साधु जी! क्या हुआ ? उनमें से किसी बुद्धिमान् पुरुष ने साधु को छुड़ा के पश्चात् उन मूर्ख चेलों को उपदेश किया कि देखो ! ये दोनों पग तुम्हारे गुरु के हैं। उन दोनों की सेवा करने से उसी को सुख पहुंचता और दुःख देने से भी उसी एक को दुःख होता है।

जैसे एक गुरु की सेवा में चेलाओं ने लीला की इसी प्रकार जो एक अखण्ड, सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप परमात्मा के विष्णु, रुद्रादि अनेक नाम हैं। इन नामों का अर्थ जैसा कि प्रथम समुल्लास में प्रकाश कर आये हैं उस सत्यार्थ को न जान कर शैव, शाक्त, वैष्णवादि संप्रदायी लोग परस्पर एक दूसरे के नाम की निन्दा करते हैं। मन्दमति तनिक भी अपनी बुद्धि को फैला कर नहीं विचारते हैं कि ये सब विष्णु, रुद्र, शिव आदि नाम एक अद्वितीय, सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी, जगदीश्वर के अनेक गुण कर्म स्वभावयुक्त होने से उसी के वाचक हैं। भला क्या ऐसे लोगों पर ईश्वर का कोप न होता होगा ?

शंख, चक्र, गदा और पद्म के चिह्नों को अग्नि में तपा के भुजा के मूल में दाग देकर पश्चात् दुग्धयुक्त पात्र में बुझाते हैं और कोई उस दूध को पी भी लेते हैं। अब देखिये ! प्रत्यक्ष ही मनुष्य के मांस का भी स्वाद उसमें आता होगा। ऐसे-ऐसे कर्मों से परमेश्वर को प्राप्त होने की आशा करते हैं और कहते हैं कि बिना शंख चक्रादि से शरीर तपाये जीव परमेश्वर को प्राप्त नहीं होता क्योंकि वह (आमः) अर्थात् कच्चा है।

ऋतं तपः सत्यं तपो दमस्तपः स्वाध्यायस्तपः । तैत्तिरीय उपनिषद।

इत्यादि तप कहाता है। अर्थात् (ऋतं तपः) यथार्थ शुद्धभाव, सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, मन को अधर्म में न जाने देना, बाह्य

इन्द्रियों को अन्यायाचरणों में जाने से रोकना अर्थात् शरीर इन्द्रिय और मन से शुभ कर्मों का आचरण करना, वेदादि सत्य विद्याओं का पढ़ना पढ़ाना, वेदानुसार आचरण करना आदि उत्तम धर्मयुक्त कर्मों का नाम तप है। धातु को तपा के चमड़ी को जलाना तप नहीं कहाता।

(प्रश्न) मूर्तिपूजा कहां से चली ?

(उत्तर) जैनियों से।

(प्रश्न) जैनियों ने कहां से चलाई ?

(उत्तर) अपनी मूर्खता से।

(प्रश्न) जैनी लोग कहते हैं कि शान्त ध्यानावस्थित बैठी हुई मूर्ति देख के अपने जीव का भी शुभ परिणाम वैसा ही होता है।

(उत्तर) जीव चेतन और मूर्ति जड़। क्या मूर्ति के सदृश जीव भी जड़ हो जायगा ? यह मूर्तिपूजा केवल पाखण्ड मत है, जैनियों ने चलाई है। इसलिये इनका खण्डन बारहवें समुल्लास में करेंगे।

जो तुम कहते हो कि मूर्ति के देखने से परमेश्वर का स्मरण होता है यह तुम्हारा कथन सर्वथा मिथ्या है। और जब वह मूर्ति सामने न होगी तो परमेश्वर के स्मरण न होने से मनुष्य एकान्त पाकर चोरी जारी आदि कुकर्म करने में प्रवृत्त भी हो सकता है। क्योंकि वह जानता है कि इस समय यहाँ मुझे कोई नहीं देखता। इसलिये वह अनर्थ करे विना नहीं चूकता। इत्यादि अनेक दोष पाषाणादि मूर्तिपूजा करने से सिद्ध होते हैं।

अब देखिये ! जो पाषाणादि मूर्तियों को न मान कर सर्वदा सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी परमात्मा को सर्वत्र जानता और मानता है वह पुरुष सर्वत्र, सर्वदा परमेश्वर को सब के बुरे भले कर्मों का द्रष्टा जान कर एक क्षणमात्र भी परमात्मा से अपने को पृथक् न जान के कुकर्म करना तो कहां रहा किन्तु मन में कुचेष्टा भी नहीं कर सकता। क्योंकि वह जानता है, जो मैं मन, वचन और कर्म से भी कुछ बुरा काम करूंगा तो इस अन्तर्यामी के न्याय से बिना दण्ड पाये कदापि न बचूंगा। और नामस्मरणमात्र से कुछ भी फल नहीं होता। जैसा कि मिशरी-मिशरी कहने से मुंह मीठा और नीम-नीम कहने से कडुवा नहीं होता किन्तु जीभ से चखने ही से मीठा वा कड़वापन जाना जाता है।

नामस्मरण इस प्रकार करना चाहिये-जैसे 'न्यायकारी' ईश्वर का एक नाम है। इस नाम से जो इसका अर्थ है कि जैसे पक्षपात रहित होकर परमात्मा

सब का यथावत न्याय करता है वैसे उसको ग्रहण कर न्याययुक्त व्यवहार सर्वदा करना, अन्याय कभी न करना। इस प्रकार एक नाम से भी मनुष्य का कल्याण हो सकता है।

जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तो किसी एक वस्तु में परमेश्वर की भावना करना अन्यत्र न करना यह ऐसी बात है कि जैसी चक्रवर्ती राजा को सब राज्य की सत्ता से छुड़ा के एक छोटी सी झोंपड़ी का स्वामी मानना। देखो! यह कितना बड़ा अपमान है? वैसा तुम परमेश्वर का भी अपमान करते हो। जब व्यापक मानते हो तो वाटिका में से पुष्पपत्र तोड़ के क्यों चढ़ाते? चन्दन घिस के क्यों लगाते? धूप को जला के क्यों देते? घंटा, घरियाल, झांज, पखाजों को लकड़ी से कूटना पीटना क्यों करते हो? तुम्हारे हाथों में है, क्यों जोड़ते ? शिर में है, क्यों शिर नमाते? अन्न, जलादि में है, क्यों नैवेद्य धरते? जल में है, स्नान क्यों कराते? क्योंकि उन सब पदार्थों में परमात्मा व्यापक है।

और तुम व्यापक की पूजा करते हो वा व्याप्य की ? जो व्यापक की करते हो तो पाषाण लकड़ी आदि पर चन्दन पुष्पादि क्यों चढ़ाते हो। और जो व्याप्य की करते हो तो हम परमेश्वर की पूजा करते हैं, ऐसा झूठ क्यों बोलते हो ? हम पाषाणादि के पुजारी हैं ऐसा सत्य क्यों नहीं बोलते ?

पाँच पूजनीय देव–

प्रथम माता मूर्त्तिमती पूजनीय देवता, अर्थात् सन्तानों को तन मन धन से सेवा करके माता को प्रसन्न रखना, हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न करना। दूसरा पिता सत्कर्त्तव्य देव। उसकी भी माता के समान सेवा करनी। तीसरा आचार्य जो विद्या का देने वाला है उसकी तन मन धन से सेवा करनी। चौथा अतिथि जो विद्वान, धार्मिक, निष्कपटी, सबकी उन्नति चाहने वाला जगत् में भ्रमण करता हुआ, सत्य उपदेश से सब को सुखी करता है उसकी सेवा करें। पांचवां स्त्री के लिये पति और पुरुष के लिये स्वपत्नी पूजनीय है।

ये पांच मूर्तिमान् देव जिनके सङ्ग से मनुष्यदेह की उत्पत्ति, पालन, सत्यशिक्षा, विद्या और सत्योपदेश की प्राप्ति होती है। ये ही परमेश्वर को प्राप्ति होने की सीढ़ियां हैं। इनकी सेवा न करके जो पाषाणादि मूर्त्तित पूजते हैं वे अतीव वेदविरोधी हैं।

(प्रश्न) यह मूर्तिपूजा और तीर्थ सनातन से चले आते हैं झूठे क्योंकर हो सकते हैं?

(उत्तर) तुम सनातन किसको कहते हो। जो सदा से चला आता है।

जो यह सदा से होता तो वेद और ब्राह्मणादि ऋषिमुनिकृत पुस्तकों में इन का नाम क्यों नहीं? यह मूर्तिपूजा अढ़ाई तीन सहस्र वर्ष के इधर-इधर वाममार्गी और जैनियों से चली है। प्रथम आर्यावर्त्त में नहीं थी। और ये तीर्थ भी नहीं थे। जब जैनियों ने गिरनार, पालिटाना, शिखर, शत्रुंजय और आबू आदि तीर्थ बनाये, उनके अनुकूल इन लोगों ने भी बना लिये।

(प्रश्न) तो कोई तीर्थ नामस्मरण सत्य है या नहीं ?

(उत्तर) है, वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का सङ्ग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्यभाषण, सत्य का मानना सत्य करना ब्रह्मचर्य्य, आचार्य, अतिथि, माता, पिता की सेवा परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना, उपासना, शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्तपुरुषार्थ, ज्ञान-विज्ञान आदि शुभगुण कर्म दुःखों से तारने वाले होने से तीर्थ हैं। और जो जल स्थलमय हैं वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते क्योंकि 'जना यस्तरन्ति तानि तीर्थानि' मनुष्य जिन करके दुःखों से तरें उनका नाम तीर्थ है। जल स्थल तारने वाले नहीं किन्तु डुबाकर मारने वाले हैं। प्रत्युत नौका आदि का नाम तीर्थ हो सकता है क्योंकि उनसे मी समुद्र आदि को तरते हैं।

(प्रश्न) गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

इत्यादि गुरुमाहात्म्य तो सच्चा है ? गुरु के पग धोके पीना, जैसी आज्ञा करें वैसा करना, गुरु लोभी हो तो वामन के समान, क्रोधी हो तो नरसिंह के सदृश, मोही ही तो राम तुल्य और कामी हो तो कृष्ण के समान गुरु को जानना, चाहे गुरु जी कैसा ही पाप करे तो भी अश्रद्धा न करनी। सन्त वा गुरु के दर्शन को जाने में पग-पग में अश्वमेध का फल होता है। यह बात ठीक है वा नहीं ?

(उत्तर) ठीक नहीं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और परब्रह्म परमेश्वर के नाम हैं। उसके तुल्य गुर कभी नहीं हो सकता। यह गुरुमाहात्म्य गुरुगीता भी एक बड़ी पोपलीला है। गुरु तो माता, पिता, आचार्य और अतिथि होते हैं। उनकी सेवा करनी, उनसे विद्या, शिक्षा लेनी देनी, शिष्य और गुरु का काम है।

पुराणों के रचयिता व्यास जी न थे।

जो अठारह पुराणों के कर्तृता व्यास जी होते तो उनमें इतने गपोड़े न होते। क्योंकि शारीरक सूत्र, योगशास्त्र के भाष्य आदि व्यासोक्त ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि व्यास जी बड़े विद्वान, सत्यवादी, धार्मिक, योगी

थे। ये ऐसी मिथ्या कथा कभी न लिखते।

जब व्यास जी ने वेद पढ़े और पढ़ा कर वेदार्थ फैलाया इसीलिये उनका नाम 'वेदव्यास' हुआ। क्योंकि व्यास कहते हैं वार पार की मध्य रेखा को अर्थात् ऋग्वेद के आरम्भ से लेकर अथर्ववेद के पार पर्यन्त चारों वेद पढ़े थे और शुकदेव तथा जैमिनि आदि शिष्यों को पढ़ाये भी थे। नहीं तो उनका जन्म का नाम 'कृष्णद्वैपायन' था जो कोई यह कहते हैं कि वेदों को व्यास जी ने इकट्ठे किये यह बात झूठी है क्योंकि व्यास जी के पिता, पितामह, प्रपितामह, पराशर, शक्ति वशिष्ठ और ब्रह्मा आदि ने भी चारों वेद पढ़े थे यह बात क्योंकर घट सके ?

(प्रश्न) पुराणों में सब बातें झूठी हैं या कोई सच्ची भी है?

(उत्तर) बहुत सी बातें झूठी हैं और कोई घुणाक्षरन्याय से सच्ची भी है। जो सच्ची हैं वह वेदादि सत्यशास्त्रों की और जो झूठी हैं वे इन पोपों के पुराणरूप घर की हैं। जैसे शिवपुराण में शैवों ने शिव को परमेश्वर मान के विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, गणेश और सूर्य्यादि को उनके दास ठहराये। वैष्णवों ने विष्णुपुराण आदि में विष्णु को परमात्मा माना और शिव आदि को विष्णु के दास। देवीभागवत में देवी को परमेश्वरी और शिव, विष्णु आदि को उसके किंकर बनाये। गणेशखण्ड में गणेश को ईश्वर और शेष सब को दास बनाये।

वैसे ही भागवत में विष्णु की नाभि से कमल, कमल से ब्रह्मा और ब्रह्मा के दाहिने पग के अंगूठे से स्वायंभव और बायें अंगूठे से शतरूपा राणी, ललाट से रुद्र और मरीचि आदि दश पुत्र, उनसे दश प्रजापति, उनकी तेरह लड़कियों का विवाह कश्यप से, उनमें से दिति से दैत्य, दनु से दानव, अदिति से आदित्य, विनता से पक्षी, कद्र से सर्प, सरमा से कुत्ते, स्याल आदि और अन्य स्त्रियों से हाथी, घोड़े, ऊंट, गधा, भैंसा, घास फूस और बबूल आदि वृक्ष कांटे सहित उत्पन्न हो गये।

वाह रे वाह ! भागवत के बनाने वाले लालभुजक्कड़ ? क्या कहना ! तुझको ऐसी-ऐसी मिथ्या बातें लिखने में तनिक भी लज्जा और शरम न आई, निपट अन्धा ही बन गया। स्त्री पुरुष के रजवीर्य के संयोग से मनुष्य तो बनते ही हैं परन्तु परमेश्वर की सृष्टिक्रम के विरुद्ध पशु, पक्षी, सर्प आदि कभी उत्पन्न नहीं हो सकते। और हाथी, ऊँट, सिंह, कुत्ता, गधा और वृक्षादि का स्त्री के गर्भाशय में स्थित होने का अवकाश कहां हो सकता है ? और सिंह आदि उत्पन्न होकर अपने मां बाप को क्यों न खा गये ? और मनुष्य शरीर से

पशु पक्षी वृक्षादि का उत्पन्न होना क्यों कर सम्भव हो सकता है ?

इन भागवतादि पुराणों के बनाने हारे जन्मते ही क्यों नहीं गर्भ ही में नष्ट हो गये ? वा जन्मते समय मर क्यों नहीं गये? क्योंकि इन पापों से बचते तो आर्यावर्त्त देश दुःखों से बच जाता।

यह भागवत बोबदेव का बनाया है जिसके भाई जयदेव ने 'गीतगोविन्द' बनाया है।

देखो ! श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरणपर्य्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा। और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जादासी से समागम, परस्त्रियों से रासमण्डल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण जी में लगाये हैं। इसको पढ़ पढ़ा सुन-सुना के अन्य मत वाले श्रीकृष्ण जी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती ?

(प्रश्न) ग्रहों का फल होता है वा नहीं ?

(उत्तर) जैसा पोपलीला का है वैसा नहीं किन्तु जैसा सूर्य्य चन्द्रमा की किरण द्वारा उष्णता शीतलता अथवा ऋतुवत्कालचक्र के सम्बन्धमात्र से अपनी प्रकृति के अनुकूल प्रतिकूल सुख दुःख के निमित्त होते हैं ।

तुमको दान देने से ग्रह प्रसन्न और न देने से अप्रसन्न होते हों तो हमको सूर्य्यादि ग्रहों की प्रसन्नता अप्रसन्नता प्रत्यक्ष दिखलाओ। जिसको आठवां सूर्य चन्द्र और दूसरे को तीसरा हो उन दोनों को ज्येष्ठ महीने में बिना जूते पहिने तपी हुई भूमि पर चलाओ। जिस पर प्रसन्न हैं उनके पग, शरीर न जलने और जिस पर क्रोधित हैं उनके जल जाने चाहिये तथा पौष मास में दोनों को नंगे कर पौर्णमासी की रात्रि भर मैदान में रक्खें। एक को शीत लगे दूसरे को नहीं तो जानो कि ग्रह क्रूर और सौम्य दृष्टि वाले होते हैं।

सच तो यह है कि सूर्य्यादि लोक जड़ हैं। वे न किसी को दुःख और न सुख देने की चेष्टा कर सकते हैं किन्तु जितने तुम ग्रहदानोपजीवी हो वे सब तुम ग्रहों की मूर्तियां हो क्योंकि ग्रह शब्द का अर्थ भी तुम में ही घटित होता है। 'ये गृह्णन्ति ते ग्रहाः' जो ग्रहण करते हैं उनका नाम ग्रह है। जबतक तुम्हारे चरण राजा रईस सेठ साहूकार और दरिद्रों के पास नहीं पहुंचते तबतक किसी

को नवग्रह का स्मरण भी नहीं होता। जब तुम साक्षात् सूर्य शनैश्चरादि मूर्तिमान् क्रूर रूप धर उन पर जा चढ़ते हो तब बिना ग्रहण किये उनको कभी नहीं छोड़ते और जो कोई तुम्हारे ग्रास में न आवे उनकी निन्दा नास्तिकादि शब्दों से करते फिरते हो।

जो यह ग्रहणरूप प्रत्यक्ष फल है सो गणितविद्या का है फलित का नहीं। जो गणितविद्या है वह सच्ची और फलित विद्या स्वाभाविक सम्बन्धजन्य को छोड़ के झूठी है।

जो धनाढ्य, दरिद्र, प्रजा, राजा, रंक होते हैं वे अपने कर्मों से होते हैं ग्रहों से नहीं। बहुत से ज्योतिषी लोग अपने लड़के, लड़की का विवाह ग्रहों की गणितविद्या के अनुसार करते हैं पुनः उनमें विरोध वा विधवा अथवा मृतस्त्रीक पुरुष हो जाता है। जो फल सच्चा होता तो ऐसा क्यों होता? इसलिये कर्म की गति सच्ची और ग्रहों की गति सुख, दुःख भोग में कारण नहीं।

श्राद्ध, तर्पण, पिण्डप्रदान उन मरे हुए जीवों को ही नहीं पहुंचता किन्तु मृतकों के प्रतिनिधि पोप जी के घर, उदर और हाथ में पहुंचता है जो वैतरणी के लिये गोदान लेते हैं वह भी पोप जी के घर में अथवा कसाई आदि के घर में पहुंचता है।

एक जाट था। उसके घर में एक गाय बहुत अच्छी और बीस सेर दूध देने वाली थी। दूध उसका बड़ा स्वादिष्ट होता था। कभी-कभी पोप जी के मुख में भी पड़ता था। उसका पुरोहित यही ध्यान कर रहा था कि जब जाट का बुड्ढा बाप मरने लगेगा तब इसी गाय का संकल्प करा लूंगा। कुछ दिनों में दैवयोग से उसके बाप का मरण समय आया। जीभ बन्द हो गई और खाट से भूमि पर ले लिया अर्थात् प्राण छोड़ने का समय आ पहुंचा। उस समय जाट के इष्ट मित्र और सम्बन्धी भी उपस्थित हुए थे। तब पोप जी ने पुकारा कि यजमान अब तू इसके हाथ से गौदान करा। जाट 10 रुपया निकाल पिता के हाथ में रखकर बोला पढ़ो संकल्प। पोप जी बोला वाह वाह! क्या बाप बारंबार मरता है? इस समय तो साक्षाद गाय को लाओं जो दूध देती हो, बूढ़ी न हो, सब प्रकार उत्तम हो। ऐसी गौ का दान करना चाहिये।

(जाट जी) हमारे पास तो एक ही गाय है उसके बिना हमारे लड़के-बालों का निर्वाह न हो सकेगा। इसलिये उसको न दूंगा। लो बीस रुपये का संकल्प पढ़ देओ और इन रुपयों से दूसरी दुधारू गाय ले लेना।

(पोप जी) वाह जी वाह! तुम अपने बाप से भी गाय को अधिक

समझते हो? क्या अपने बाप को वैतरणी नदी में डुबा कर दुःख देना चाहते हो। तुम अच्छे सुपुत्र हुए तब तो पोप जी की ओर सब कुटुम्बी हो गये क्योंकि उन सबको पहिले ही पोप जी ने बहका रखा था और उस समय भी इशारा कर दिया। सब ने मिल कर हठ से उसी गाय का दान उसी पोप जी को दिला दिया। उस समय जाट कुछ भी न बोला। उसका पिता मर गया और पोप जी बच्छासहित गाय और दोहने की बटलोही को ले अपने घर में गाय बछड़े को बांध बटलोही धर पुनः जाट जी के घर आया और मृतक के साथ श्मशानभूमि में जाकर दाहकर्म कराया। वहाँ भी कुछ-कुछ पोपलीला चलाई। पश्चात् दशगात्र सपिंडी कराने आदि में भी उसको मूंडा महाब्राह्मणों ने भी लूटा और भुक्खड़ों ने भी बहुत-सा माल पेट में भरा अर्थात् जब सब क्रिया हो चुकी तब जाट ने जिस किसी के घर से दूध मांग-मूंग निर्वाह किया। चौदहवें दिन प्रातःकाल पोप जी के घर पहुंचा। देखा तो पोप जो गाय दुह, बटलोई भर, पोप जी की उठने की तैयारी थी। इतने ही में जाट जी पहुंचे। उस को देख पोप जी बोला आइये! यजमान बैठिये !

(जाट जी) तुम भी पुरोहित जी इधर आओ।

(पोप जी) अच्छा दूध धर आऊं।

(जाट जी) नहीं नहीं दूध की बटलोई इधर लाओ। पोप जी विचारे जा बैठे और बटलोई सामने धर दी।

(जाट जी) तुम बड़े झूठे हो।

(पोप जी) क्या झूठ किया ?

(जाट जी) कहो तुमने गाय किस लिये ली थी?

(पोप जी) तुम्हारे पिता के वैतरणी नदी तरने के लिये।

(जाट जो) अच्छा तो तुमने वहां वैतरणी के किनारे पर गाय क्यों न पहुंचाई? हम तो तुम्हारे भरोसे पर रहे और तुम अपने घर बांध बैठे। न जाने मेरे बाप ने वैतरणी में कितने गौते खाये होंगे?

(पोप जी) नहीं-नहीं, वहां इस दान के पुण्य के प्रभाव से दूसरी गाय बन कर उसको उतार दिया होगा।

(जाट जी) वैतरणी नदी यहाँ से कितनी दूर और किधर की ओर है।

(पोप जी) अनुमान से कोई तीस क्रोड कोश दूर है क्योंकि उच्चास कोटि योजन पृथिवी है और दक्षिण नैर्ऋत दिशा में वैतरणी नदी है।

(जाट जी) इतनी दूर से तुम्हारी चिट्ठी वा तार का समाचार गया हो

उसका उत्तर आया हो कि वहां पुण्य की गाय बन गई। अमुक के पिता को पार उतार दिया, दिखलाओ ?

(पोप जी) हमारे पास गरुडपुराण के लेख के विना डाक वा तारवर्की दूसरी कोई नहीं ।

(जाट जी) इस गरुड़पुराण को हम सच्चा कैसे मानें ?

(पोप जी) जैसे सब मानते हैं।

(जाट जी) यह पुस्तक तुम्हारे पुरुषाओं ने तुम्हारी जीविका के लिये बनाया है क्योंकि पिता को विना अपने पुत्रों के कोई प्रिय नहीं। जब मेरा पिता मेरे पास चिट्ठी पत्री वा तार भेजेगा तभी मैं वैतरणी के किनारे गाय पहुंचा दूंगा और उनको पार उतार, पुनः गाय को घर ले आ दूध को मैं और मेरे लड़के बाले पिया करेंगे। लाओ ! दूध की भरी हुई वटलोही, गाय, बछड़ा लेकर जाट जी अपने घर को चला।

(पोप जी) तुम दान देकर लेते हो तुम्हारा सत्यानाश हो जायगा।

(जाट जो) चुप रहो ! नहीं तो तेरह दिन लों दूध के बिना जितना दुःख हमने पाया है सब कसर निकाल दूंगा । तब पोप जी चुप रहे और जाट जी गाय बछड़ा ले अपने घर पहुंचे। जब ऐसे ही जाट जी के से पुरुष हों तो पोपलीला संसार में न चले।

(प्रश्न) तुम्हारे कहने से गोदानादि दान किसी को न देना और न कुछ दान पुण्य करना, ऐसा सिद्ध होता है।

(उत्तर) यह तुम्हारा कहना सर्वथा व्यर्थ हैं क्योंकि सुपात्रों को, परोपकारियों को परोप- कारार्थ सोना, चांदी, हीरा, मोती, माणिक, अन्न, जल, स्थान, वस्त्र, गाय आदि दान अवश्य करना उचित है किन्तु कुपात्रों को कभी न देना चाहिये।

(प्रश्न) कुपात्र और सुपात्र का लक्षण क्या है ?

(उत्तर) जो छली, कपटी, स्वार्थी, विषयी, काम, क्रोध, लोभ, मोह से युक्त, परहानि करने वाले लंपटी, मिथ्यावादी, अविद्वान, कुसंगी, आलसी, जो कोई दाता हो उसके पास बारम्बार मांगना, धरना देना, ना किये पश्चात् भी हठता से मांगते ही जाना, सन्तोष न होना, जो न दे उसकी निन्दा करना, शाप और गालिप्रदानादि देना, अनेक वार जो सेवा करे और एक वार न करे तो उसका शत्रु बन जाना, ऊपर से साधु का वेश बना लोगों को बहका कर ठगना और अपने पास पदार्थ हो तो भी मेरे पास कुछ भी नहीं है कहना, सबको

फुसला फुसलू कर स्वार्थ सिद्ध करना, रात दिन भीख मांगने ही में प्रवृत्त रहना, निमन्त्रण दिये पर यथेष्ट भांगादि मादक द्रव्य खा पीकर बहुत सा पराया पदार्थ खाना, पुनः उन्मत्त होकर प्रमादी होना, सत्य मार्ग का विरोध और झूठ मार्ग में अपने प्रयोजनार्थ चलना, वैसे ही अपने चेलों को केवल अपनी ही सेवा करने का उपदेश करना, अन्य योग्य पुरुषों की सेवा करने का नहीं, सद्विद्यादि प्रवृत्ति के विरोधी, जगत् के व्यवहार अर्थात् स्त्री, पुरुष, माता, पिता, सन्तान, राजा, प्रजा इष्टमित्रों में अप्रीति कराना कि ये सब असत्य हैं। जगत भी मिथ्या है। इत्यादि दुष्ट उपदेश करना आदि कुपात्रों के लक्षण हैं।

और जो ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय, वेदादि विद्या के पढ़ने पढ़ाने हारे, सुशील, सत्यवादी परोपकारप्रिय, पुरुषार्थी, उदार, विद्या धर्म की निरन्तर उन्नति करनेहारे, धर्मात्मा, शान्त, निन्दा स्तुति में हर्ष शोकरहित, निर्भय, उत्साही, योगी, ज्ञानी, सृष्टिक्रम, वेदाज्ञा, ईश्वर के गुण कर्म स्वभावानुकूल वर्तमान करनेहारे, न्याय की रीति युक्त, पक्षपातरहित, सत्योपदेश और सत्यशास्त्रों के पढ़ने पढ़ानेहारे के परीक्षक, किसी को लल्लो पत्तो न करें, प्रश्नों के यथार्थ समाधानकर्ता, अपने आत्मा के तुल्य अन्य का भी सुख, दुःख, हानि, लाभ समझने वाले, अविद्यादि क्लेश, हठ, दुराग्रहाऽभिमानरहित, अमृत के समान अपमान और विष के समान मान को समझने वाले, सन्तोषी, जो कोई प्रीति से जितना देवे उतने ही से प्रसन्न, एक वार आपत्काल में मांगे भी न देने वा वर्जने पर भी दुःख वा वुरी चेष्टा न करना, वहां से झट लौट जाना, उसकी निन्दा न करना, सुखी पुरुषों के साथ मित्रता, दुखियों पर करुणा, पुण्यात्माओं से आनन्द और पापियों से उपेक्षा अर्थात् रागद्वेषरहित रहना, सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, निष्कपट, ईर्ष्याद्वेषरहित, गम्भीराशय, सत्पुरुष, धर्म से युक्त और सर्वथा दुष्टाचार से रहित, अपने तन मन धन को परोपकार करने में लगाने वाले, पराये सुख के लिये अपने प्राणों को भी समर्पितकर्तृता इत्यादि शुभलक्षणयुक्त सुपात्र होते हैं। परन्तु दुर्भिक्षादि आपत्काल में अन्न, जल, वस्त्र और औषधि पथ्य स्थान के अधिकारी सब प्राणीमात्र हो सकते हैं।

(प्रश्न) जो ये गरुडपुराणादि ग्रन्थ हैं वेदार्थ वा वेद की पुष्टि करने वाले हैं वा नहीं ?

(उत्तर) नहीं, किन्तु वेद के विरोधी और उलटे चलते हैं।

देखो ! शिवपुराण में त्रयोदशी, सोमवार, आदित्यपुराण में रवि,

चन्द्रखण्ड में सोमग्रह बाले मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु केतु के वैष्णव एकादशी, वामन की द्वादशी, नृसिंह वा अनन्त की चतुर्दशी, चन्द्रमा की पौर्णमासी, दिक्पालों की दशमी, दुर्गा की नौमी, वसुओं की अष्टमी, मुनियों की सप्तमी, कार्तिक स्वामी की षष्ठी, नाग की पंचमी, गणेश की चतुर्थी, गौरी की तृतीया, अश्विनीकुमार की द्वितीया, आद्यादेवी की प्रतिपदा और पितरों की अमावास्या पुराणरीति से ये दिन उपवास करने के हैं। और सर्वत्र यही लिखा है कि जो मनुष्य इन वार और तिथियों में अन्न, पान ग्रहण करेगा वह नरकगामी होगा।

अब पोप और पोप जी के चेलों को चाहिये कि किसी वार अथवा किसी तिथि में भोजन न करें क्योंकि जो भोजन वा पान किया तो नरकगामी होंगे।

गर्भवती वा सद्योविवाहिता स्त्री, लड़के वा युवा पुरुषों को तो कभी उपवास न करना चाहिये। परन्तु किसी को करना भी हो तो जिस दिन अजीर्ण हो क्षुधा न लगे, उस दिन शर्करावत् (शर्बत) वा दूध पीकर रहना चाहिये। जो भूख में नहीं खाते और विना भूख के भोजन करते हैं वे दोनों रोगसागर में गोते खा दुःख पाते हैं।

एक समय डाकू परिकाल को कोई साहूकार नौकर कर जहाज में बिठा के देशान्तर में ले गया। वहां से जहाज में सुपारी भरी। परिकाल ने एक सुपारी तोड़ आधा टुकड़ा कर बनिये से कहा यह मेरी आधी सुपारी जहाज में धर दो और लिख दो कि जहाज में आधी सुपारी परिकाल की है। बनिये ने कहा कि चाहे तुम हजार सुपारी ले लेना। परिकाल ने कहा – नहीं, हम अधर्मी नहीं हैं जो हम झूठ मूठ लें। हम को तो आधी चाहिये। बनिया विचारा भोला भाला था उसने लिख दिया। जब अपने देश में बन्दर पर जहाज आया और सुपारी उतारने की तैयारी हुई तब परिकाल ने कहा हमारी आधी सुपारी दे दो। बनिया वही आधी सुपारी देने लगा। तब परिकाल झगड़ने लगा मेरी तो जहाज में आधी सुपारी है। आधा बांट लूंगा। राजपुरुषों तक झगड़ा गया। परिकाल ने बनिये का लेख दिखलाया कि इस ने आधी सुपारी देनी लिखी है। बनिया बहुत सा कहता रहा परन्तु उसने न माना। आधी सुपारी लेकर वैष्णवों के अर्पण कर दी। तब तो वैष्णव बड़े प्रसन्न हुए। अब तक उस डाकू चोर परिकाल की मूर्ति मन्दिरों में रखते हैं। यह कथा भक्तमाल में लिखी है। बुद्धिमान देख लें कि वैष्णव, उनके सेवक और नारायण तीनों चोर मण्डली हैं वा नहीं ?

(प्रश्न) कबीरपन्थी तो अच्छे हैं ?

(उत्तर) नहीं।

(प्रश्न) क्यों अच्छे नहीं ? पाषाणादि मूर्तिपूजा का खण्डन करते हैं। कबीर साहब फूलों से उत्पन्न हुए और अन्त में भी फूल हो गये। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव का जन्म जब नहीं था तब भी कबीर साहब थे। बड़े सिद्ध, ऐसे कि जिस वात को वेद पुराण भी नहीं जान सकता उसको कबीर जानते हैं। सच्चा रस्ता है सो कबीर जी ने दिखलाया है। इनका मन्त्र सत्यनाम कबीर आदि है।

(उत्तर) पाषाणादि को छोड़ पलङ्ग, गद्दी, तकिये, खड़ाऊं, ज्योति अर्थात दीप आदि का पूजना पाषाणमूर्त्ति से न्यून नहीं। क्या कबीर साहब भुनुगा था वा कलियां था जो फूलों से उत्पन्न हुआ? और अन्त में फूल हो गया ?

यहां जो बात सुनी जाती है वही सच्ची होगी कि कोई जुलाहा काशी में रहता था। उसके लड़के बालक नहीं थे। एक समय थोड़ी सी रात्री थी। एक गली में चला जाता था तो देखा सड़क के किनारे में एक टोकनी में फूलों के बीच में उसी रात का जन्मा बालक था। वह उसको उठा ले गया, अपनी स्त्री को दिया, उसने पालन किया। जब वह बड़ा हुआ तब जुलाहे का काम करता था। किसी पण्डित के पास संस्कृत पढ़ने के लिये गया। उसने उसका अपमान किया। कहा कि हम जुलाहे को नहीं पढ़ाते। इसी प्रकार कई पण्डितों के पास फिरा परन्तु किसी ने न पढ़ाया। तब ऊटपटांग भाषा बनाकर जुलाहे आदि नीच लोगों को समझाने लगा। तंबूरे लेकर गाता था, भजन वनाता था। विशेष पण्डित, शास्त्र, वेदों की निन्दा किया करता था। कुछ मूर्ख लोग उसके जाल में फंस गये। जब मर गया तब लोगों ने उसको सिद्ध बना लिया। जो-जो उसने जीते जी बनाया था उसको उसके चेले पढ़ते रहे।

(प्रश्न) पंजाब देश में नानक जी ने एक मार्ग चलाया है। क्योंकि वे भी मूर्ति का खण्डन करते थे। मुसलमान होने से बचाये। वे साधु भी नहीं हुए किन्तु गृहस्थ बने रहे। देखो ! उन्होंने यह मन्त्र उपदेश किया है इसी से विदित होता है कि उनका आशय अच्छा था-

ओं सत्यनाम कर्त्ता पुरुष निर्भो निर्वैर अकालमूर्त अजोनि सहभं गुरु प्रसाद जप आदि सच जुगादि सच है भी सच नानक होसी भी सच।।

(ओ३म्) जिसका सत्य नाम है वह कर्त्ता पुरुष भय और वैररहित अकाल मूर्ति जो काल में और जोनि में नहीं आता प्रकाशमान है उसी का जप

गुरु की कृपा से कर वह परमात्मा आदि में सच था जुगों की आदि में सच वर्तमान में सच, और होगा भी सच।

(उत्तर) नानक जी का आशय तो अच्छा था परन्तु विद्या कुछ भी नहीं थी। हां! भाषा उस देश की जो कि ग्रामों की है उसे जानते थे। वेदादि शास्त्र और संस्कृत कुछ भी नहीं जानते थे। जो जानते होते तो 'निर्भय' शब्द को 'निर्मो' क्यों लिखते ? और इसका दृष्टान्त उनका बनाया संस्कृत स्तोत्र है। चाहते थे कि मैं संस्कृत में भी 'पग अड़ाऊं' परन्तु बिना पढ़े संस्कृत कैसे आ सकता है? हां उन ग्रामीणों के सामने कि जिन्होंने संस्कृत कभी सुना भी नहीं था 'संस्कृती' बना कर संस्कृत के भी पण्डित बन गये होंगे। यह बात अपने मान प्रतिष्ठा और अपनी प्रख्याति की इच्छा के बिना कभी न करते। उनको अपनी प्रतिष्ठा की इच्छा अवश्य थी। नहीं तो जैसी भाषा जानते थे कहते रहते और यह भी कह देते कि मैं संस्कृत नहीं पढ़ा। जब कुछ अभिमान था तो मान प्रतिष्ठा के लिये कुछ दंभ भी किया होगा। इसीलिये उनके ग्रन्थ में जहां तहां वेदों की निन्दा और स्तुति भी है, क्योंकि जो ऐसा न करते तो उनसे भी कोई वेद का अर्थ पूछता जब न आता तब प्रतिष्ठा नष्ट होती। इसीलिये पहिले ही अपने शिष्यों के सामने कहीं-कहीं वेदों के विरुद्ध बोलते थे और कहीं-कहीं वेद के लिये अच्छा भी कहा हैं। क्योंकि जो कहीं अच्छा न कहते तो लोग उनको नास्तिक बनाते। जैसे

वेद पढ़त ब्रह्मा मरे चारों वेद कहानि।
सन्त की महिमा वेद न जानी
ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर

क्या वेद पढ़ने वाले मर गये और नानक जी आदि अपने को अमर समझते थे। क्या वे नहीं मर गये ? वेद तो सब विद्याओं का भंडार है परन्तु जो चारों वेदों को कहानी कहे उसकी सब बातें कहानी हैं। जो मूर्खों का नाम सन्त होता है वे विचारे वेदों की महिमा कभी नहीं जान सकते। नानक जी वेदों ही का मान करते तो उनका सम्प्रदाय न चलता, न वे गुरु बन सकते थे क्योंकि संस्कृत विद्या तो पढ़े ही नहीं थे तो दूसरे को पढ़ा कर शिष्य कैसे बना सकते थे ?

यह सच है कि जिस समय नानक जी पंजाब में हुए थे उस समय पंजाब संस्कृत विद्या से सर्वथा रहित मुसलमानों से पीड़ित था। उस समय

उन्होंने कुछ लोगों को बचाया। नानक जी के सामने कुछ उनका सम्प्रदाय वा बहुत से शिष्य नहीं हुए थे। क्योंकि अविद्वानों में यह चाल है कि मरे पीछे उनकी सिद्ध बना लेते हैं, पश्चात् बहुत सा माहात्म्य करके ईश्वर के समान मान लेते हैं।

हां! नानक जी बड़े धनाढ्य और रईस भी नहीं थे परन्तु उनके चेलों ने 'नानकचन्द्रोदय' और 'जन्मशाखी' आदि में बड़े सिद्ध और बड़े-बड़े ऐश्वर्य वाले थे, लिखा है। नानक जी ब्रह्मा आदि से मिले, बड़ी बातचीत को, सब ने इनका मान्य किया। नानक जी के विवाह में बहुत से घोड़े, रथ, हाथी, सोने, चांदी, मोती, पन्ना आदि रत्नों से सजे हुए और अमूल्य रत्नों का पारा-वार न था, लिखा है। भला ये गपोड़े नहीं तो क्या हैं ? इस में इनके चेलों का दोष है, नानक जी का नहीं।

दूसरा जो उनके पीछे उनके लड़के से उदासी चलें। और रामदास आदि से निर्मले।

अब उदासी कहते हैं हम बड़े, निर्मले कहते हैं हम बड़े, अकाली तथा सूतरहसाई कहते हैं कि सर्वोपरि हम हैं।

इनमें गोविन्दसिंह जी शूरवीर हुए। जो मुसलमानों ने उनके पुरुषाओं को बहुत सा दुःख दिया था उनसे वैर लेना चाहते थे परन्तु इनके पास कुछ सामग्री न थी और उधर मुसलमानों की बादशाही प्रज्वलित हो रही थी। इन्होंने एक पुरश्चरण करवाया। प्रसिद्धि की कि मुझको देवी ने वर और खड्ग दिया है कि तुम मुसलमानों से लड़ो, तुम्हारा विजय होगा। बहुत से लोग उनके साथी हो गये और उन्होंने, जैसे वाममार्गियों ने 'पंच मकार' चक्रांकितों ने 'पंच संस्कार' चलाये थे वैसे 'पंच ककार' चलाये। अर्थात् इनके पंच ककार युद्ध के उपयोगी थे। एक 'केश' अर्थात् जिसके रखने से लड़ाई में लकड़ी और तलवार से कुछ बचावट हो। दूसरा 'कंगण' जो शिर के ऊपर पगड़ी में अकाली लोग रखते हैं और हाथ में 'कड़ा' जिससे हाथ और शिर बच सकें तीसरा 'काछ' अर्थात् जानु के ऊपर एक जांघिया कि जो दौड़ने और कूदने में अच्छा होता है बहुत करके अखाड़मल्ल और नट भी इसको धारण इसलिये करते हैं कि जिससे शरीर का मर्मस्थान बचा रहे और अटकाव न हो। चौथा 'कंगा' कि जिससे केश सुधरते हैं। पांचवां 'काचू' कि जिससे शत्रु से भेंट भड़क्का होने से लड़ाई में काम आवे। इसीलिये यह रीति गोविन्दसिंह जी ने अपनी बुद्धिमत्ता से उस समय के लिये की थी। अब इस समय में उनका

रखना कुछ उपयोगी नहीं है। परन्तु अब जो युद्ध के प्रयोजन के लिये बातें कर्तृतव्य थीं उनको धर्म के साथ मान ली हैं।

(प्रश्न) दादूपन्थी का मार्ग तो अच्छा है ?

(उत्तर) अच्छा तो वेदमार्ग हैं, जो पकड़ा जाय तो पकड़ो, नहीं तो सदा गोते खाते रहोगे। इनके मत में दादू जी का जन्म गुजरात में हुआ था। पुनः जयपुर के पास 'आमेर' में रहते थे। तेली का काम करते थे। ईश्वर की सृष्टि की विचित्र लीला है कि दादू जी भी पुजाने लग गये। अब वेदादि शास्त्रों की सब बातें छोड़कर 'दादूराम - दादूराम' में ही मुक्ति मान ली है। जब सत्योपदेशक नहीं होता तब ऐसे-ऐसे ही बखेड़े चला करते हैं।

(प्रश्न) स्वामीनारायण का मत कैसा है ?

(उत्तर) 'यादृशी शीतला देवी तादृशो वाहनः खरः' जैसी गुसाई जी की धनहरणादि में विचित्र लीला है वैसी ही स्वामीनारायण की भी है। देखिये ! एक 'सहजानन्द' नामक अयोध्या के समीप एक ग्राम का जन्मा हुआ था। वह ब्रह्मचारी होकर गुजरात, काठियावाड़, कच्छभुज आदि देशों में फिरता था। उसने देखा कि यह देश मूर्ख भोला भाला है। चाहें जैसे इनको अपने मत में झुका लें वैसे ही ये लोग झुक सकते हैं। वहां उसने दो चार शिष्य बनाये। उन ने आपस में सम्मति कर प्रसिद्ध किया कि सहजानन्द नारायण का अवतार और बड़ा सिद्ध है और भक्तों को चतुर्भुज मूर्ति धारण कर साक्षात् दर्शन भी देता है।

इसमें यह दृष्टान्त उचित होगा कि जैसे कोई एक चोरी करता पकड़ा गया था। न्यायाधीश ने उसकी नाक काट डालने का दण्ड किया। जब उसकी नाक काटी गई तब वह धूर्त नाचने गाने और हंसने लगा। लोगों ने पूछा कि तू क्यों हंसता है? उसने कहा कुछ कहने की बात नहीं है! लोगों ने पूछा- ऐसी कौन सी बात है? उसने कहा बड़ी भारी आश्चर्य की बात है, हमने ऐसी कभी नहीं देखी। लोगों ने कहा- कहो! क्या बात है? उसने कहा कि मेरे सामने साक्षात् चतुर्भुज नारायण खड़े हैं। मैं देख कर बड़ा प्रसन्न होकर नाचता गाता अपने भाग्य को धन्यवाद देता हूँ कि मैं नारायण का साक्षात् दर्शन कर रहा हूं। लोगों ने कहा हमको दर्शन क्यों नहीं होता ? वह बोला नाक की आड़ हो रही है। जो नाक कटवा डालो तो नारायण दीखे, नहीं तो नहीं। उन में से किसी मूर्ख ने चाहा कि नाक जाय तो जाय परन्तु नारायण का दर्शन अवश्य करना चाहिये। उसने कहा कि मेरी भी नाक काटो, नारायण को दिखलाओ। उसने

उसकी नाक काट कर कान में कहा कि तू भी ऐसा ही कर, नहीं तो मेरा और तेरा उपहास होगा । उसने भी समझा कि अब नाक तो आती नहीं इसलिये ऐसा ही कहना ठीक है। तब तो वह भी वहां उसी के समान नाचने, कूदने, गाने, बजाने, हंसने और कहने लगा कि मुझको भी नारायण दीखता है। वैसे होते-होते एक सहस्र मनुष्यों का झुण्ड हो गया और बड़ा कोलाहल मचा और अपने संप्रदाय का नाम 'नारायणदर्शी' रक्खा। किसी मूर्ख राजा ने सुना, उनको बुलाया। जब राजा उनके पास गया तब तो वे बहुत कुछ नाचने, कूदने, हंसने लगे। तब राजा ने पूछा कि यह क्या बात है। उन्होंने कहा कि साक्षात् नारायण हमको दीखता है।

(राजा) हमको क्यों नहीं दीखता ?

(नारायणदर्शी) जबतक नाक है तबतक नहीं दीखेगा और जब नाक कटवा लोगे तव नारायण प्रत्यक्ष दीखेंगे। उस राजा ने विचारा कि यह बात ठीक है।

ज्योतिषी जी ! मुहूर्त देखिये।

ज्योतिषी जी ने उत्तर दिया- जो हुकम अन्नदाता ! दशमी के दिन प्रातःकाल आठ बजे नाक कटवाने और नारायण के दर्शन करने का बड़ा अच्छा मुहूर्त है। वाह रे पोप जी ! अपनी पोथी में नाक काटने कटवाने का भी मुहूर्त लिख दिया। जब राजा की इच्छा हुई और उन सहस्र नकटों के सीधे बांध दिये तब तो वे बड़े ही प्रसन्न होकर नाचने, कूदने और गाने लगे। यह बात राजा के दीवान आदि कुछ-कुछ बुद्धि वालों को अच्छी न लगी। राजा के एक चार पीढ़ी का बूढ़ा नब्बे वर्ष का दीवान था। उसको जाकर उसके परपोते ने जो कि उस समय दीवान था, वह बात सुनाई। तब उस वृद्ध ने कहा कि वे धूर्त हैं। तू मुझ को राजा के पास ले चल। वह ले गया। बैठते समय राजा ने बड़े हर्षित होके उन नाककटों की बातें सुनाई। दीवान ने कहा कि सुनिये महाराज ! ऐसी शीघ्रता न करनी चाहिये। बिना परीक्षा किये पश्चात्ताप होता है।

(राजा) क्या ये सहस्र पुरुष झूठ बोलते होंगे ?

(दीवान) झूठ बोलो वा सच, बिना परीक्षा के सच झूठ कैसे कह सकते हैं ?

(राजा) परीक्षा किस प्रकार करनी चाहिये।

(दीवान) विद्या, सृष्टिक्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से।

(राजा) तो आप ही कहिए कैसा किया जाय ?

(दीवान) मैं बुड्ढा और घर में बैठा रहता हूं और अब थोड़े दिन जीऊंगा भी। इसलिये प्रथम परीक्षा मैं कर लेऊँ। तत्पश्चात् जैसा उचित समझें वैसा कीजियेगा।

(राजा) बहुत अच्छी बात है। ज्योतिषी जी! दीवान के लिये मुहूर्त देखो।

(ज्योतिषी) जो महाराज की आज्ञा। यही शुक्ल पंचमी दस बजे का मुहूर्त अच्छा है।

जब पञ्चमी आई तब राजा जी के पास आ कर आठ बजे बुड्ढे दीवान जी ने राजा जी से कहा कि सहस्र दो सहस्र सेना लेके चलना चाहिये।

(राजा) वहां सेना का क्या काम है ?

(दीवान) आपको राज्यव्यवस्था की जानकारी नहीं है। जैसा मैं कहता हूं वैसा कीजिये ।

(राजा) अच्छा जाओ भाई, सेना को तैयार करो। साढ़े नौ बजे सवारी करके राजा सब को लेकर गया। उसको देख कर वे नाचने और गाने लगे। जाकर बैठे। उनके महन्त जिसने यह सम्प्रदाय चलाया था, जिसकी प्रथम नाक कटी थी उसको बुलाकर कहा कि आज हमारे दीवान जी को नारायण का दर्शन कराओ। उसने कहा अच्छा। दश बजे का समय जब आया तब एक थाली मनुष्य ने नाक के नीचे पकड़ रक्खी। उसने पैना चाकू ले नाक काट थाली में डाल दी और दीवान जी की नाक से रुधिर की धार छूटने लगी। दीवान जी का मुख मलिन पड़ गया। फिर उस धूर्त ने दीवान जी के कान में मन्त्रोपदेश किया कि आप भी हंसकर सबसे कहिये कि मुझको नारायण दीखता है। अब नाक कटी हुई नहीं आवेगी। जो ऐसा न कहोगे तो तुम्हारा बड़ा ठठ्ठा होगा। सब लोग हंसी करेंगे। वह इतना कह अलग हुआ और दीवान जी ने अंगोछा हाथ में ले नाक की आड़ में लगा दिया। जब दीवान जी से राजा ने पूछा, कहिये! नारायण दीखता है वा नहीं? दीवान जी ने राजा के कान में कहा कि कुछ भी नहीं दीखता। वृथा इस धूर्त्त ने सहस्रों मनुष्यों को भ्रष्ट किया। राजा ने दीवान से कहा अब क्या करना चाहिये ? दीवान ने कहा, इनको पकड़ के कठिन दण्ड देना चाहिये। जब लों जीवें तब लों बन्दीघर में रखना चाहिये और इस दुष्ट को कि जिसने इन सबको बिगाड़ा है गधे पर चढ़ा बड़ी दुर्दशा के साथ मारना चाहिये। जब राजा और दीवान कान में बातें

करने लगे तब उन्होंने डरके भागने की तैयारी की परन्तु चारों ओर फौज ने घेरा दे रक्खा था, न भाग सके । राजा ने आज्ञा दी कि सबको पकड़ बेड़ियां डाल दो और इस दुष्ट का काला मुख कर, गधे पर चढ़ा, इसके कण्ठ में फटे जूतों का हार पहिना सर्वत्र घुमा छोकरों से धूड़ राख इस पर डलवा चौक चौक में जूतों से पिटवा कुत्तों से लुंचवा मरवा डाला जावे। जो ऐसा न होवे तो पुनः दूसरे भी ऐसा काम करते न डरेंगे। जब ऐसा हुआ तब नाककटे का सम्प्रदाय बन्द हुआ।

(प्रश्न) जातिभेद ईश्वरकृत है वा मनुष्यकृत ?

(उत्तर) ईश्वरकृत और मनुष्यकृत भी जातिभेद है।

(प्रश्न) कौन से ईश्वरकृत और कौन से मनुष्यकृत ?

(उत्तर) मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, जलजन्तु आदि जातियां परमेश्वरकृत हैं। जैसे पशुओं में गौ, अश्व, हस्ति आदि जातियां, वृक्षों में पीपल, वट, आम्र आदि पक्षियों में हंस, काक, वकादि जलजन्तुओं में मत्स्य, मकरादि जातिभेद हैं वैसे मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज जातिभेद हैं, मनुष्यकृत हैं। परन्तु मनुष्यों में ब्राह्मणादि को सामान्य जाति में नहीं किन्तु सामान्य विशेषात्मक जाति में गिनते हैं। जैसे पूर्व वर्णाश्रमव्यवस्था में लिख आये वैसे ही गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णव्यवस्था माननी अवश्य हैं। इसमें मनुष्यकृततत्व उनके गुण, कर्म, स्वभाव से पूर्वोक्तानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि वर्णों की परीक्षापूर्वक व्यवस्था करनी राजा और विद्वानों का काम है। भोजनभेद भी ईश्वरकृत और मनुष्यकृत भी है। जैसे सिंह मांसाहारी और अर्णाभैंसा घासादि का आहार करते हैं यह ईश्वरकृत और देश काल वस्तु भेद से भोजनमेद मनुष्यकृत है।

(प्रश्न) देखो! यूरोपियन लोग मुंडे जूते, कोट पतलून पहरते, होटल में सब के हाथ का खाते हैं इसीलिये अपनी बढ़ती करते जाते हैं।

(उत्तर) यह तुम्हारी भूल है क्योंकि मुसलमान अन्त्यज लोग सब के हाथ का खाते हैं पुनः उनकी उन्नति क्यों नहीं होती ? जो यूरोपियनों में बाल्यावस्था में विवाह न करना, लड़का लड़की को विद्या सुशिक्षा करना कराना, स्वयंवर विवाह होना, बुरे बुरे आदमियों का उपदेश नहीं होता। वे विद्वान् होकर जिस किसी के पाखण्ड में नहीं फसते जो कुछ करते हैं वह सब परस्पर विचार और सभा से निश्चित करके करते हैं। अपनी स्वजाति की उन्नति के लिये तन, मन, धन व्यय करते हैं। आलस्य को छोड़ उद्योग किया

करते हैं।

(प्रश्न) आप सब का खण्डन करते ही आते हो परन्तु अपने-अपने धर्म में सब अच्छे हैं। खण्डन किसी का न करना चाहिये। जो करते हो तो आप इनसे विशेष क्या बतलाते हो। जो बतलाते हो तो क्या आप से अधिक वा तुल्य कोई पुरुष न था ? और न है ? ऐसा अभिमान करना आपको उचित नहीं, क्योंकि परमात्मा की सृष्टि में एक-एक से अधिक, तुल्य और न्यून बहुत हैं। किसी को घमण्ड करना उचित नहीं?

(उत्तर) धर्म सब का एक होता है वा अनेक ? जो कहो अनेक होते हैं तो एक दूसरे के विरुद्ध होते हैं वा अविरुद्ध ? जो कहो कि विरुद्ध होते हैं तो एक के बिना दूसरा धर्म नहीं हो सकता और जो कहो कि अविरुद्ध हैं तो पृथक-पृथक होना व्यर्थ है। इसलिये धर्म और अधर्म एक ही हैं, अनेक नहीं। यही हम विशेष कहते हैं कि जैसे सब सम्प्रदायों के उपदेशों को कोई राजा इकट्ठा करे तो एक सहस्र से कम नहीं होंगे परन्तु इनका मुख्य भाग देखो तो पुरानी, किरानी, जैनी और कुरानी चार ही हैं। क्योंकि इन चारों में सब सम्प्रदाय आ जाते हैं। कोई राजा उनकी सभा करके कोई जिज्ञासु होकर प्रथम वाममार्गी से पूछे - हे महाराज! मैंने आज तक न कोई गुरु और न किसी धर्म का ग्रहण किया है । कहिये! सब धर्मों में से उत्तम धर्म किसका है ? जिसको मैं ग्रहण करू ?

(वाममार्गी) हमारा है। (जिज्ञासु) ये नौ सौ निन्न्यानवे कैसे हैं?

(वाममार्गी) सब झूठे और नरगामी हैं क्योंकि 'कौलात्परतरं नहि'। इस वचन के प्रमाण से हमारे धर्म से परे कोई धर्म नहीं है। (जिज्ञासु) आप का क्या धर्म है ?

(वाममार्गी) भगवती का मानना, मद्य मांसादि पंच मकारों का सेवन और रुद्रयामल आदि चौसठ तन्त्रों का मानना इत्यादि, जो तू मुक्ति की इच्छा करता है तो हमारा चेला हो जा।

(जिज्ञासु) अच्छा! परन्तु और महात्माओं का भी दर्शन कर पूछ पाछ आऊँगा। पश्चात् जिसमें मेरी श्रद्धा और प्रीति होगी उसका चेला हो जाऊंगा।

(वाममार्गी) अरे ! क्यों भ्रान्ति में पड़ा है। ये लोग तुमको बहका कर अपने जाल में फसा देंगे। किसी के पास मत जावे। हमारे ही शरणागत हो जा नहीं तो पछतावेगा। देख! हमारे मत में भोग और मोक्ष दोनों हैं।

(जिज्ञासु) अच्छा देख तो आऊं। आगे चलकर शैव के पास जाके

पूछा तो ऐसा ही उत्तर उसने दिया। इतना विशेष कहा कि विना शिव, रुद्राक्ष, भस्मधारण और लिङ्गार्चन के मुक्ति कभी नहीं होती। वह उसको छोड़ नवीन वेदान्ती जी के पास गया।

(जिज्ञासु) कहो महाराज ! आपका धर्म क्या है?

(वेदान्ती) हम धर्माऽधर्म कुछ भी नहीं मानते। हम साक्षात् ब्रह्म हैं । हम में धर्माधर्म कहां है ? यह जगत् सब मिथ्या है। और जो ज्ञानी शुद्ध चेतन हुआ चाहे तो अपने को ब्रह्म मान, जीवभाव को छोड़, नित्यमुक्त हो जायेगा।

(जिज्ञासु) जो तुम ब्रह्म नित्यमुक्त हो तो ब्रह्म के गुण, कर्म, स्वभाव तुम में क्यों नहीं ?. और शरीर में क्यों बंधे हो ?

(वेदान्ती) तुमको शरीर दीखते हैं इसी से तू भ्रान्त है। हमको कुछ नहीं दीखता बिना ब्रह्म के।

(जिज्ञासु) तुम देखने वाले कौन और किसको देखते हो ?

(वेदान्ती) देखनेवाला ब्रह्म और ब्रह्म को ब्रह्म देखता है।

(जिज्ञासु) क्या दो बह्म हैं?

(वेदान्ती) नहीं। अपने आप को देखता है।

(जिज्ञासु) क्या कोई अपने कंधे पर आप चढ़ सकता है ? तुम्हारी बात कुछ नहीं केवल पागलपने की है। उसने आगे चल कर जैनियों के पास जाकर पूछा। उन्होंने भी वैसा ही कहा परन्तु इतना विशेष कहा कि 'जिणधर्म्म' के बिना सब धर्म खोटा। जगत् का कर्तृता अनादि ईश्वर कोई नहीं। जगत् अनादि काल से जैसा का वैसा बना है और बना रहेगा। आ तू हमारा चेला हो जा। क्योंकि हम सम्यकत्वी अर्थात् सब प्रकार से अच्छे हैं। उत्तम बातों को मानते हैं। जैन मार्ग से भिन्न मिथ्यवादी हैं। आगे चल के ईसाई से पूछा। उसने वाममार्गी के तुल्य सब जवाब सवाल किये। इतना विशेष बतलाया 'सब मनुष्य पापी हैं, अपने सामर्थ्य से पाप नहीं छूटता। बिना ईसा पर विश्वास के पवित्र होकर मुक्ति को नहीं पा सकता। ईसा ने सबके प्रायश्चित्त के लिये अपने प्राण देकर दया प्रकाशित की है। तु हमारा ही चेला हो जा। जिज्ञासु सुनकर मौलवी साहब के पास गया। उनसे भी ऐसे ही जवाब सवाल हुए। इतना विशेष कहा 'लाशरीक' खुदा उसके पैगम्बर और कुरानशरीफ के बिना माने कोई निजात नहीं पा सकता। जो इस मजहब को नहीं मानता वह दोजखी और काफिर है वाजिवुल्कत्ल है। जिज्ञासु सुनकर वैष्णव के पास गया। वैसा ही संवाद हुआ। इतना विशेष कहा कि 'हमारे तिलक छापे देखकर यमराज डरता है। 'जिज्ञासु

ने मन में समझा कि जब मच्छर, मक्खी, पुलिस के सिपाही, चोर, डाकू और शत्रु नहीं डरते तो यमराज के गण क्यों डरेंगे ? फिर आगे चला तो सब मतवालों ने अपने-अपने को सच्चा कहा। कोई हमारा कबीर सच्चा, कोई नानक, कोई दादू, कोई बल्लभ, कोई सहजानन्द कोई माध्व आदि को बड़ा और अवतार बतलाते सुना। सहस्र से पूछ उनके परस्पर एक दुसरे का विरोध देख, विशेष निश्चय किया कि इनमें कोई गुरु करने योग्य नहीं ।

आप्त विद्वान के सामने जाकर बोला - अब इन सम्प्रदायों के बखेड़ों से मेरा चित्त भ्रान्त हो गया क्योंकि जो मैं इनमें से किसी एक का चेला होऊंगा तो नौ सौ निन्न्यानवे से विरोधी होना पड़ेगा। जिसके नौ सौ निन्यानवे शत्रु और एक मित्र है उसको सुख कभी नहीं हो सकता। इसलिये आप मुझको उपदेश कीजिये जिसको मैं ग्रहण करूं।

आप्तविद्वान् - ये सब मत अविद्याजन्य विद्याविरोधी हैं। मूर्ख, पामर और जंगली मनुष्य को बहकाकर अपने जाल में फसा के अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वे विचारे अपने मनुष्यजन्म के फल से रहित होकर अपना मनुष्यजन्म व्यर्थ गमाते हैं। देख! जिस बात में ये सहस्र एकमत हों वह वेदमत ग्राह्य है और जिसमें परस्पर विरोध हो वह कल्पित, झूठा, अधर्म, अग्राह्य है।

(जिज्ञासु) इसकी परीक्षा कैसे हो ?

(आप्त) तू जाकर इन-इन बातों को पूछ। सबकी एक सम्मति हो जायगी। तब वह उन सहस्र की मंडली के बीच में खड़ा होकर बोला कि सुनो सब लोगो ! सत्यभाषण में धर्म है वा मिथ्या में ? सब एक स्वर होकर बोले कि सत्यभाषण में धर्म और असत्यभाषण में अधर्म है। वैसे ही विद्या पढ़ने, ब्रह्मचर्य करने, पूर्ण युवावस्था में विवाह, सत्सङ्ग, पुरुषार्थ, सत्य व्यवहार, आदि में धर्म और अविद्या ग्रहण, ब्रह्मचर्य न करने, व्यभिचार करने, कुसंग, आलस्य, असत्य व्यवहार, छल, कपट, हिंसा, परहानि करने आदि कुकर्मों में ? सब ने एक मत होके कहा कि विद्यादि के ग्रहण में धर्म और अविद्यादि के ग्रहण में अधर्म।

★★★★★

बारहवां समुल्लास

नास्तिक मत - चारवाक, बौद्ध, जैन विषय

अनुभूमिका - जब आर्यावर्त्तस्थ मनुष्यों में सत्यासत्य का यथावत् निर्णय कराने वाली वेदविद्या छूटकर अविद्या फैल के मतमतान्तर खड़े हुए, यही जैन आदि के विद्याविरुद्ध मतप्रचार का निमित्त हुआ। क्योंकि वाल्मीकीय और महाभारतादि में जैनियों का नाममात्र भी नहीं लिखा और जैनियों के ग्रन्थों में वाल्मीकीय और भारत में कथित राम, कृष्णादि की गाथा बड़े विस्तारपूर्वक लिखी है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह मत इनके पीछे चला क्योंकि जैसा अपने मत को बहुत प्राचीन जैनी लोग लिखते हैं वैसा होता तो वाल्मीकीय आदि ग्रन्थों में उनकी कथा अवश्य होती इसलिये इन ग्रन्थों के पीछे चला है।

जब विद्वान् लोगों में सत्यासत्य का निश्चय नहीं होता तभी अविद्वानों को महा अन्धकार में पड़ कर बहुत दुख उठाना पड़ता है, इसलिए सत्य के जय और असत्य के क्षय के अर्थ मित्रता से वाद वा लेख करना हमारी मनुष्यजाति का मुख्य काम है। यदि ऐसा न हो तो मनुष्यों की उन्नति कभी न हो।

और यह बौद्ध जैन मत का विषय बिना इन के अन्य मत वालों को अपूर्व लाभ और बोध करने वाला होगा क्योंकि ये लोग अपने पुस्तकों को किसी अन्य मत वाले को देखने पढ़ने वा लिखने को भी नहीं देते। बड़े परिश्रम से मेरे और विशेष आर्यसमाज मुम्बई के मन्त्री सेठ सेवकलाल कृष्णदास के पुरुषार्थ से ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं। तथा काशीस्थ जैनप्रभाकर यन्त्रालय में छपने और मुम्बई में 'प्रकरणरत्नाकर' ग्रन्थ के छपने से भी सब लोगों को जैनियों का मत देखना, सहज हुआ है।

भला यह किन विद्वानों की बात है कि अपने मत के पुस्तक आप ही देखना और दूसरों को न दिखलाना। इसी से विदित होता है कि इन ग्रन्थों के बनाने वालों को प्रथम ही शंका थी कि इन ग्रन्थों में असम्भव बातें हैं जो दूसरे मत वाले देखेंगे तो खंडन करेंगे और हमारे मत वाले दूसरों का ग्रन्थ देखेंगे तो इस मत में श्रद्धा न रहेगी। अस्तु जो हो परन्तु बहुत मनुष्य ऐसे हैं जिनको अपने दोष तो नहीं दीखते किन्तु दूसरों के दोष देखने में अति उत्सुक रहते हैं। यह न्याय की बात नहीं क्योंकि प्रथम अपने दोष देख निकाल के पश्चात् दूसरे

के दोषों में दृष्टि देके निकालें। इन बौद्ध, जैनियों के मत का विषय सब सज्जनों के सम्मुख धरता हूँ। जैसा है वैसा विचारें।

कोई एक बृहस्पति नामा पुरुष हुआ था जो वेद ईश्वर और यज्ञादि उत्तम कर्मों को भी नहीं मानता था। देखिये! उनका मत –

यावज्जीवं सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचरः ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।

कोई मनुष्यादि प्राणी मृत्यु के अगोचर नहीं है अर्थात् सबको मरना है इसलिये जब तक शरीर में जीव रहे तब तक सुख से रहे। जो कोई कहे कि धर्माचरण से कष्ट होता है जो धर्म को छोड़े तो पुनर्जन्म में बड़ा दुःख पावें। उसको 'चारवाक' उत्तर देता है कि अरे भोले भाई! जो मरे के पश्चात् शरीर भस्म हो जाता है कि जिसने खाया पिया है वह पुनः संसार में न आवेगा इसलिये जैसे हो सके वैसे आनन्द में रहो। लोक में नीति से चलो, ऐश्वर्य को बढ़ाओ और उससे इच्छित भोग करो। यही लोक समझो परलोक कुछ नहीं।

देखो ! पृथिवी, जल, अग्नि, वायु इन चार भूतों के परिणाम से यह शरीर बना है। इसमें इनके योग से चौतन्य उत्पन्न होता है। जैसे मादक द्रव्य खाने पीने से मद (नशा) उत्पन्न होता है इसी प्रकार जीव शरीर के साथ उत्पन्न होकर शरीर के नाश के साथ आप भी नष्ट हो जाता है। फिर किसको पाप पुण्य का फल होगा ?

जो वाममार्गियों ने मिथ्या कपोलकल्पना करके वेदों के नाम से अपना प्रयोजन सिद्ध करना अर्थात् यथेष्ट मद्यपान, मांस खाने और परस्त्रीगमन करने आदि दुष्ट कामों की प्रवृत्ति होने के अर्थ वेदों को कलङ्क लगाया। इन्हीं बातों को देख कर चारवाक बौद्ध तथा जैन लोग वेदों की निन्दा करने लगे और पृथक एक वेदविरुद्ध अनीश्वरवादी अर्थात् नास्तिक मत चला लिया। जो चारवाकादि वेदों का मूलार्थ विचारते तो झूठी टीकाओं को देख कर सत्य वेदोक्त मत से क्यों हाथ धो बैठते ? क्या करें विचारे 'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः'। जब नष्ट भ्रष्ट होने का समय आता है सब मनुष्य की उलटी बुद्धि हो जाती है।

अब जो चारवाकादिकों में भेद हैं सो लिखते हैं। ये चारवाकादि बहुत सी बातों में एक हैं परन्तु चारवाक देह की उत्पत्ति के साथ जीवोत्पत्ति और उसके नाश के साथ ही जीव का भी नाश मानता है। पुनर्जन्म और परलोक को नहीं मानता। एक प्रत्यक्ष प्रमाण के बिना अनुमानादि प्रमाणों को भी नहीं

मानता। चारवाक शब्द का अर्थ जो बोलने में 'प्रगल्भ' और विशेषार्थ 'वतण्डिक' होता है। और बौद्ध जैन प्रत्यक्षादि चारों प्रमाण, अनादि जीव, पुनर्जन्म, परलोक और मुक्ति को भी मानते हैं। इतना ही चारवाक से बौद्ध और जैनियों का भेद है परन्तु नास्तिकता, वेद, ईश्वर की निन्दा, परमतद्वेष, छः दर्शन और जगत् का कर्तृता कोई नहीं इत्यादि बातों में एक ही हैं। यह चारवाक का मत संक्षेप से दर्शा दिया। बौद्धमत के विषय में संक्षेप से लिखते हैं।

जिनको बौद्ध तीर्थंकर मानते हैं उन्हीं को जैन भी मानते हैं इसीलिये ये दोनों एक हैं।

सब संसार में दुःखरूप दुःख का घर दुःख का साधनरूप भावना करके संसार से छूटना चारवाकों में अधिक मुक्ति और अनुमान तथा जीव को न मानना बौद्ध मानते हैं।

जो सब संसार दुःखरूप होता तो किसी जीव की प्रवृत्ति न होनी चाहिये। संसार में जीवों की प्रवृत्ति प्रत्यक्ष दीखती है इसलिये सब संसार दुःखरूप नहीं हो सकता किन्तु इसमें सुख दुःख दोनों हैं।

जैन लोग कहते है कि जीव ही परमेश्वर हो जाता है। वे जो अपने तीर्थकरों ही को केवली मुक्ति प्राप्त और परमेश्वर मानते हैं, अनादि परमेश्वर कोई नहीं।

जैसे विषधर सर्प में मणि त्यागने योग्य है वैसे जो जैनमत में नहीं वह चाहे कितना बड़ा धार्मिक पण्डित हो उसको त्याग देना ही जैनियों को उचित है। (प्रकरणरत्नाकर 2, 18)

अन्य दर्शनी कुलिंगी अर्थात जैनमत विरोधी उनका दर्शन भी जैनी लोग न करें। (प्रकरणरत्नाकर 2, 29)

जो जैन धर्म से विरुद्ध धर्म हैं वे सब मनुष्यों को पापी करने वाले हैं इसलिये किसी के अन्य धर्म को न मान कर जैनधर्म को ही मानना श्रेष्ठ है। (प्रकरणरत्नाकर 2, 27)

जो जैनमत विरोधी मिथ्यात्व अर्थात् मिथ्या धर्म वाले हैं वे क्यों जन्मे? जो जन्मे तो बड़े क्यों? अर्थात् शीघ्र ही नष्ट हो जाते तो अच्छा होता। (प्रकरणरत्नाकर 2, 81)

वे मूर्ख लोग हैं जो जैनधर्म से विरुद्ध हैं और जो जिनेन्द्रभाषित धर्मोपदेष्टा साधु वा गृहस्थ अथवा ग्रन्थकर्तृता हैं वे तीर्थंकरों के तुल्य हैं।

उनके तुल्य कोई भी नहीं। (प्रकरणरत्नाकर 2, 101)

जो जिनवचन के अनुकूल चलते हैं ये पूजनीय और जो विरुद्ध चलते हैं वे अपूज्य हैं। जैन गुरुओं को मानना अर्थात् अन्यमार्गियों को न मानना। (प्रकरणरत्नाकर 2, 108)

जो मृत्युपर्यन्त दुःख हो तो भी कृषि व्यापारादि कर्म जैनी लोग न करें क्योंकि ये कर्म नरक में ले जाने वाले हैं। (प्रकरणरत्नाकर 2, 109)

जो जैनागम से विरुद्ध शास्त्रों को मानने वाले हैं वे अधमाधम हैं। चाहें कोई प्रयोजन भी सिद्ध होता हो तो भी जैन मत से विरुद्ध न बोले न माने। चाहें कोई प्रयोजन सिद्ध होता है तो भी अन्य मत का त्याग कर दे। (प्रकरणरत्नाकर 2, 121)

जो कोई ऐसा कहे कि जैन साधुओं में धर्म है, हमारे और अन्य में भी धर्म है तो वह मनुष्य क्रोड़ान क्रोड़ वर्ष तक नरक में रह कर फिर भी नीच जन्म पाता है । (प्रकरणरत्नाकर 2, 122)

जो उत्तम प्रारब्धवान् मनुष्य होते हैं वे ही जिन धर्म का ग्रहण करते हैं अर्थात् जो जिनधर्म का ग्रहण नहीं करते उनका प्रारब्ध नष्ट है। (प्रकरणरत्नाकर 2, 148)

विवेकसार पृष्ठ 51-52 - मूर्तिपूजा से मुक्ति होती है और जिनमन्दिर में जाने से सद्गुण आते हैं। जो जल चन्दनादि से तीर्थंकरों की पूजा करे वह नरक से छूट स्वर्ग को जाय।

विवेकसार पृष्ठ 55 - जिन मन्दिर में ऋषभदेवादि की मूर्तियों के पूजने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि होती है।

विवेकसार पृष्ठ 61 - जिन मूर्तियों की पूजा करें तो सब जगत् के क्लेश छूट जाये ।

विवेकसार पृष्ठ 225 - शिव, विष्णु आदि की मूर्तियों की पूजा करनी बहुत बुरी है अर्थात् नरक का साधन है।

विवेकसार पृष्ठ 156 - जैनमत का साधु लिंगधारी अर्थात वेशधारी मात्र हो तो भी उसका सत्कार श्रावक लोग करें। चाहें साधु शुद्धचरित्र हों चाहें अशुद्धचरित्र सब पूजनीय हैं।

विवेकसार पृष्ठ 168 - जैनमत का साधु चरित्रहीन हो तो भी अन्य मत के साधुओ से श्रेष्ठ है।

विवेकसार पृष्ठ 171 - श्रावक लोग जैनमत के साधुओं को चरित्ररहित भ्रष्टाचारी देखें तो भी उनकी सेवा करनी चाहिये।

अब और थोड़ी सी असम्भव बातें इनकी सुनो-

विवेकसार पृष्ठ 78 - एक करोड़ साठ लाख कलशों से महावीर को जन्म समय में स्नान कराया।

रत्नसार पृष्ठ 105 - भूंजने, कूटने, पीसने, अन्न पकाने आदि में पाप होता है।

(समीक्षक) अब देखिये इनकी विद्याहीनता ! भला ये कर्म न किये जायें तो मनुष्यादि प्राणी कैसे जी सकें ? और जैनी लोग भी पीड़ित होकर मर जायें।

रत्नसार पृष्ठ 104 - बागीचा लगाने से एक लक्ष पाप माली को लगता है।

(समीक्षक) जो माली को लक्ष पाप लगता है तो अनेक जीव पत्र, फल, फूल और छाया से आनन्दित होते हैं तो करोड़ों गुण पुण्य भी होता ही है इस पर कुछ ध्यान भी न दिया यह कितना अन्धेर है?

चमरी रखना और भिक्षा मांग के खाना, शिर के बाल लुंचित कर देना, श्वेत वस्त्र धारण करना, क्षमायुक्त रहना, किसी का संग न करना, ऐसे लक्षणयुक्त जैनियों के श्वेताम्बर हैं जिनको जती कहते हैं। दूसरे दिगम्बर अर्थात् वस्त्र धारण न करना, शिर के बाल उखाड़ डालना, पिच्छिका एक ऊन के सूतों का झाड़ लगाने का साधन बगल में रखना, जो कोई भिक्षा दे तो हाथ में लेकर खा लेना ये दिगम्बर दूसरे प्रकार के साधु होते हैं और भिक्षा देने वाला गृहस्थ जब भोजन कर चुके उसके पश्चात् भोजन करें वे जिनर्षि अर्थात् तीसरे प्रकार के साधु होते हैं। दिगम्बरों का श्वेताम्बरों के साथ इतना ही भेद है कि दिगम्बर लोग स्त्री का संसर्ग नहीं करते और श्वेताम्बर करते हैं इत्यादि बातों से मोक्ष को प्राप्त होते हैं। यह इनके साधुओं का भेद है।

(प्रश्न) मुख पर पट्टी अवश्य बांधना चाहिये क्योंकि 'वायुकाय' अर्थात जो वायु में सूक्ष्म शरीर वाले जीव रहते हैं वे मुख के बाफ की उष्मता से मरते हैं और उसका पाप मुख पर पट्टी न बांधने वाले पर होता है इसीलिये हम लोग मुख पर पट्टी बांधना अच्छा समझते हैं।

(उत्तर) यह बात विद्या और प्रत्यक्षादि प्रमाणादि की रीति से अयुक्त है। क्योंकि जीव अजर, अमर है फिर वे मुख की बाफ से कभी नहीं मर

सकते। इनको तुम भी अजर, अमर, मानते हो ।

(प्रश्न) जीव तो नहीं मरता परन्तु जो मुख के उष्ण वायु से उनको पीड़ा पहुंचती है उस पीड़ा पहुँचाने वाले को पाप होता है इसीलिये मुख पर पट्टी बांधना अच्छा है।

(उत्तर) यह भी तुम्हारी बात सर्वथा असम्भव है, क्योंकि पीड़ा दिये बिना किसी जीव का किंचित् भी निर्वाह नहीं हो सकता। जब मुख के वायु से तुम्हारे मत में जीवों को पीड़ा पहुँचती है तो चलने फिरने, बैठने, हाथ उठाने और नेत्रादि के चलाने में भी पीड़ा अवश्य पहुँचती होगी। इसलिये तुम भी जीवों को पीड़ा पहुँचाने से पृथक नहीं रह सकते।

(प्रश्न) हम अपने हाथ से उष्ण जल नहीं करते और न किसी गृहस्थ को उष्ण जल करने की आज्ञा देते हैं, इसलिये हमको पाप नहीं।

(उत्तर) जो तुम उष्ण जल न लेते, न पीते तो गृहस्थ उष्ण क्यों करते ? इसलिये उस पाप के भागी तुम ही हो : प्रत्युत अधिक पापी हो क्योंकि जो तुम किसी एक गृहस्थ को उष्ण करने को कहते तो एक ही ठिकाने उष्ण होता। जब वे गृहस्थ इस भ्रम में रहते हैं कि न जाने साधु जी किस के घर को आयेंगे इसलिये प्रत्येक गृहस्थ अपने-अपने घर में उष्ण जल कर रखते हैं। इसके पाप के भागी मुख्य तुम ही हो।

रत्नसार भाग 1, पृष्ठ 166 - 167 में लिखा है -

(1) ऋषभदेव का शरीर (500) पांच सौ धनुष लम्बा और 8400000 (चौरासी लाख) पूर्व का आयु (2) अजितनाथ का (450) धनुष परिमाण का शरीर और 7200000 (बहत्तर लाख) पूर्व वर्ष का आयु।

नोट- साढ़े तीन हाथ का धनुष होता है।

कुरुक्षेत्र में (84) चौरासी सहस्र नदी हैं।

(प्रकरणरत्नाकर 4, 63)

समीक्षक - भला कुरुक्षेत्र बहुत छोटा देश है, उसको न देख कर एक मिथ्या बात लिखने में इनको लज्जा भी न आई।

★★★★★

तेरहवां समुल्लास

ईसाई मत विषय

2. और ईश्वर ने कहा कि उजियाला होवे और उजियाला हो गया। और ईश्वर ने उजियाले को देखा कि अच्छा है।

(समीक्षक) क्या ईश्वर की बात जड़रूप उजियाले ने सुन ली ? जो सुनी हो तो इस समय भी सूर्य और दीप अग्नि का प्रकाश हमारी तुम्हारी बात क्यों नहीं सुनता ? प्रकाश जड़ होता है। वह कभी किसी को बात नहीं सुन सकता। क्या जब ईश्वर ने उजियाले को देखा तमी जाना कि उजियाला अच्छा है? पहिले नहीं जानता था ? जो जानता होता तो देख कर अच्छा क्यों कहता ? जो नहीं जानता था तो वह ईश्वर ही नहीं। इसीलिये तुम्हारी बाइवल ईश्वरोक्त और उसमें कहा हुआ ईश्वर सर्वज्ञ नहीं है।

9. और कितने दिनों के पीछे यों हुआ कि काइन भूमि के फलों में से परमेश्वर के लिये भेंट लाया। और हाबिल भी अपनी झुंड में से पहिलोठी और मोटी-मोटी लाया और परमेश्वर ने हाबील का और उसकी भेंट का आदर किया। परन्तु काइन का और उसकी भेंट का आदर न किया। इसलिये काइन अति कुपित हुआ और अपना मुँह फुलाया। तब परमेश्वर नै काइन से कहा कि तू क्यों क्रुद्ध है और तेरा मुंह क्यों फूल गया।

(समीक्षक) यदि ईश्वर मांसहारी न होता तो भेड़ की भेंट और हाबील का सत्कार और काइन का तथा उसकी भेंट का तिरस्कार क्यों करता ?

10. जब परमेश्वर ने काइन से कहा तेरा भाई हाबिल कहां है और वह बोला मैं नहीं जानता। क्या मैं अपने भाई का रखवाला हूँ। तब उसने कहा तूने क्या किया ? तेरे भाई के लोहू का शब्द भूमि से मुझे पुकारता है। और अब तू पृथिवी से स्रापित है।

(समीक्षक) क्या ईश्वर काइन से पूछे बिना हाबिल का हाल नहीं जानता था और लोहू का शब्द भूमि से कभी पुकार सकता है? ये सब बातें अविद्वानों की हैं, इसीलिये यह पुस्तक न ईश्वर और न विद्वान् का बनाया हो सकता है।

15. और ईश्वर ने नूह को और उसके बेटों को आशीष दिया और उन्हें कहा कि हर एक जीता चलता जन्तु तुम्हारे भोजन के लिये होगा। मैने हरी तरकारी के समान सारी वस्तु तुम्हें दिईं। केवल मांस उनके जीव अर्थात् उसके लोहू समेत मत खाना ।

(समीक्षक) क्या एक को प्राणकष्ट देकर दूसरों को आनन्द कराने से दयाहीन ईसाइयों का ईश्वर नहीं है ? जो माता पिता एक लड़के को मरवा कर दूसरे को खिलावें तो महापापी नहीं हों ? इसी प्रकार यह बात है क्योंकि ईश्वर के लिये सब प्राणी पुत्रवत् हैं। ऐसा न होने से इनका ईश्वर कसाईंवत् काम करता है और सब मनुष्यों को हिंसक भी इसी ने बनाये हैं। इसलिये ईसाइयों का ईश्वर निर्दय होने से पापी क्यों नहीं।

17. तब उसने अपनी पत्नी सरी से कहा कि देख मैं जानता हूँ तू देखने में सुन्दर स्त्री है। इसलिये यों होगा कि जब मिश्री तुझें देखें तब वे कहेंगे कि यह उसकी पत्नी है और मुझे मार डालेंगे परन्तु तुझें जीती रखेंगे। तू कहियो कि मैं उसकी बहिन हूँ जिससे तेरे कारण मेरा भला होय और मेरा प्राण तेरे हेतु से जीता रहे।

(समीक्षक) अब देखिये ! जो अबिरहाम बड़ा पैगम्बर ईसाई और मुसलमानों का बजता है और उसके कर्म मिथ्याभाषणादि बुरे हैं। भला ! जिनके ऐसे पैगम्बर हों उनको विद्या वा कल्याण का मार्ग कैसे मिल सके ?

23. आओ हम अपने पिता को दाख रस पिलावें और हम उसके साथ शयन करें कि हम अपने पिता से वंश जुगावें। तब उन्होंने उस रात अपने पिता को दाख रस पिलाया और पहिलोठी गई और अपने पिता के साथ शयन किया । हम उसे आज रात भी दाख रस पिलावें तू जाके शयन कर। सो लूत की दोनों बेटियां अपने पिता से गर्भिणी हुईं।

(समीक्षक) देखिये पिता पुत्री भी जिस मद्यपान के नशे में कुकर्म करने से न बच सके ऐसे दुष्ट मद्य को जो ईसाई आदि पीते हैं उनको बुराई का क्या पारावार है? इसलिये सज्जन लोगों को मद्य के पीने का नाम भी न लेना चाहिये।

34. और यअकूब अपने मार्ग चला गया और ईश्वर के दूत उसे आ मिले। और याकूब ने उन्हें देख के कहा कि यह ईश्वर की सेना है।

(समीक्षक) अब ईसाइयों का ईश्वर मनुष्य होने में कुछ भी संदिग्ध नहीं रहा, क्योंकि सेना भी रखता है। जब सेना हुई तब शस्त्र भो होंगे और जहाँ तहाँ चढ़ाई करके लड़ाई भी करता होगा, नहीं तो सेना रखने का क्या प्रयोजन है ?

36. ईश्वर का मुंह देखा।

(समीक्षक) जब ईश्वर के मुंह है तो और भी सब अवयव होंगे और

वह जन्म मरण वाला भी होगा।

44. क्योंकि मैं परमेश्वर तेरा ईश्वर ज्वलित सर्वशक्तिमान हूँ। पितरों के अपराध का दण्ड उनके पुत्रों को जो मेरा वैर रखते हैं उनकी तीसरी और चौथी पीढ़ी लो देवैया हूँ।

(समीक्षक) भला यह किस घर का न्याय है कि जो पिता के अपराध से चार पीढ़ी तक दण्ड देना अच्छा समझना। क्या अच्छे पिता के दुष्ट और दृष्ट के अच्छे सन्तान नहीं होते ? जो ऐसा है तो चौथी पीढ़ी तक दण्ड कैसे दे सकेगा ? और जो पांचवीं पीढ़ी से आगे दुष्ट होगा उसको दण्ड न दे सकेगा। बिना अपराध किसी को दण्ड देना अन्यायकारी की बात है।

66. तब यीशु सारे गालील देश में उनकी सभाओं में उपदेश करता हुआ और राज्य का सुसमाचार प्रचार करता हुआ और लोगों में हर एक रोग और हर एक व्याधि को चंगा करता हुआ फिरा किया। सब रोगियों को जो नाना प्रकार के रोगों और पीड़ाओं से दुःखी थे और भूतग्रस्तों और मृगी वाले और अर्द्धांगियों को उसके पास लाये और उसने उन्हें चंगा किया।

(समीक्षक) जैसे आजकल पोपलीला निकालने मन्त्र पुरश्चरण आशीर्वाद ताबीज और भस्म की चुटुकी देने से भूतों को निकालना रोगों को छुड़ाना सच्चा हो तो वह इञ्जील की बात भी सच्ची होवे। इस कारण भोले मनुष्यों को भ्रम में फंसाने के लिये ये बातें हैं। जो ईसाई लोग ईसा की बातों को मानते हैं तो यहाँ के देवी भोपों की बातें क्यों नहीं मानते। क्योंकि ये बातें इन्हीं के सदृश हैं।

71. और देखो एक कोढ़ी ने आ उसको प्रणाम कर कहा है प्रभु जी आप चाहें तो मुझे शुद्ध कर सकते हैं। यीशु ने हाथ बढ़ा उसे छूके कहा मैं तो चाहता हूँ शुद्ध हो जा और उसका कोढ़ तुरन्त शुद्ध हो गया।

(समीक्षक) ये सब बातें भोले मनुष्यों के फंसाने की हैं। क्योंकि जब ईसाई लोग इन विद्या सृष्टिक्रमविरुद्ध बातों को सत्य मानते हैं तो शुक्राचार्य, धन्वन्तरि, कश्यप आदि की बातें जो पुराण और भारत में अनेक दैत्यों की मरी हुई सेना को जिला दी। बृहस्पति के पुत्र कच की टुकड़ा टुकड़ा कर जानवर मच्छियों को खिला दिया, फिर भी शुक्राचार्य ने जीता कर दिया। पश्चात् कच को मार कर शुक्राचार्य को खिला दिया फिर उसको पेट में जीता कर बाहर निकाला। आप मर गया उसको कच ने जीता किया। कश्यप ऋषि ने मनुष्यसहित वृक्ष को तक्षक से भस्म हुए पीछे पुनः वृक्ष और मनुष्य को

जिला दिया। धन्वन्तरि ने लाखो मुर्दे जीवित कर दिए। लाखों कोढ़ी आदि रोगियों को चंगा किया। लाखों अन्धे और बहिरों को आँख और कान दिये इत्यादि कथा को मिथ्या क्यों कहते हैं? जो उक्त बातें मिथ्या हैं तो ईसा की बातें भी मिथ्या है।

73. देखो। लोग एक अर्धाङ्गी को जो खटोले पर पड़ा था उस पास लाये और यीशु ने उनका विश्वास देख के उस अर्धांगी से कहा हे पुत्र ढाढस कर, तेरे पाप क्षमा किये गये हैं। मैं धर्मियों को नहीं परन्तु पापियों को पश्चात्ताप के लिये बुलाने आया हूँ।

(समीक्षक) यह भी बात वैसी ही असम्भव है जैसी पूर्व लिख आये हैं और जो पाप क्षमा करने की बात है वह केवल भोले लोगों को प्रलोभन देकर फसाना है। जैसे दूसरे के पिये मद्य, भांग अफीम खाये का नशा दूसरे को नहीं प्राप्त हो सकता वैसे ही किसी का किया हुआ पाप किसी के पास नहीं जाता किन्तु जो करता है वही भोगता है, यही ईश्वर का न्याय है। यदि दूसरे का किया पाप-पुण्य दूसरे को प्राप्त होवे अथवा न्यायाधीश स्वयं ले लेवे या कर्ताओं ही को यथायोग्य फल ईश्वर न देवे तो वह अन्यायकारी हो जाये।

75. तब यीशु ने उनसे कहा तुम्हारे पास कितनी रोटियां हैं। उन्होंने कहा सात और छोटी मछलियां। तब उसने लोगों को भूमि पर बैठने की आज्ञा दी। और उसने उन सात रोटियों को और मछलियों को धन्य मान के तोड़ा और अपने शिष्यों को दिया और शिष्यों ने लोगों को दिया। सो सब खाके तृप्त हुए और जो टुकड़े बच रहे उनके सात टोकरे भर उठाये। जिन्होंने खाया सो स्त्रियों और बालकों को छोड़ चार सहस्र पुरुष थे।

(समीक्षक) अब देखिये ! क्या यह आजकल के झूठे सिद्धों और इन्द्रजाली आदि के समान छल की बात नहीं है ? उन रोटियों में अन्य रोटियां कहां से आ गई ? यदि ईसा में ऐसी सिद्धियां होतीं तो आप भूखा हुआ गूलर के फल खाने को क्यों भटका करता था ? अपने लिये मिट्टी पानी और पत्थर आदि से मोहनभोग, रोटियां क्यों न बना लीं ? ये सब बातें लड़कों के खेलपन की हैं। जैसे कितने ही साधु वैरागी ऐसे छल की बातें करके भोले मनुष्यों को ठगते हैं वैसे ही ये भी हैं।

76. और तब वह हर एक मनुष्य को उसके कार्य्य के अनुसार फल देगा।

(समीक्षक) जब कर्मानुसार फल दिया जायेगा तो ईसाइयों का पाप

क्षमा होने का उपदेश करना व्यर्थ है और वह सच्चा हो तो यह झूठा होवे। यदि कोई कहे कि क्षमा करने के योग्य क्षमा किये जाते और क्षमा न करने के योग्य क्षमा नहीं किये जाते हैं यह भी ठीक नहीं। क्योंकि सब कर्मों के फल यथायोग्य देने ही से न्याय और पूरी दया होती है।

79. मैं तुम से सच कहता हूँ, धनवान को स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करना कठिन होगा। फिर भी मैं तुम से कहता हूं कि ईश्वर के राज्य में धनवान के प्रवेश करने से ऊंट का सूई के नाके में से जाना सहज है।

(समीक्षक) इससे यह सिद्ध होता है कि ईसा दरिद्र था। धनवान् लोग उस की प्रतिष्ठा नहीं करते होंगे, इसलिये यह लिखा होगा। परन्तु यह बात सच नहीं क्योंकि धनाढ्यों और दरिद्रों में अच्छे बुरे होते हैं। जो कोई अच्छा काम करे वह अच्छा और बुरा करे वह बुरा फल पाता है।

81. भोर को जब वह नगर को फिर जाता था तब उसको भूख लगी। और मार्ग में एक गूलर का वृक्ष देख के वह उस पास आया परन्तु उस में और कुछ न पाया केवल पत्ते। और उसको कहा तुझ में फिर कभी फल न लगेंगे। इस पर गूलर का पेड़ तुरन्त सूख गया।

(समीक्षक) सब पादरी लोग ईसाई कहते हैं कि वह बड़ा शान्त क्षमान्वित और क्रोधादि दोषरहित था। परन्तु इस बात को देख क्रोधी, ऋतु का ज्ञानरहित ईसा था और वह जंगली मनुष्यपन के स्वभावयुक्त वर्तृतता था। भला! वृक्ष जड़ पदार्थ है। उसका क्या अपराध था कि उसको शाप दिया और वह सूख गया। उसके शाप से तो न सूखा होगा किन्तु कोई ऐसी औषधि डालने से सुख गया हो तो आश्चर्य नहीं।

86. जब वे खाते थे तब यीशु ने रोटी लेके धन्यवाद किया और उसे तोड़ के शिष्यों को दिया और कहा लेओ खाओ यह मेरा देह है। और उसने कटोरा ले के धन्य माना और उनको देके कहा तुम इससे पीओ क्योंकि यह मेरा लोहू नये नियम का लोहू है।

(समीक्षक) भला यह ऐसी बात कोई भी सभ्य करेगा ? बिना अविद्वान जंगली मनुष्य के शिष्यों से खाने की चीज को अपने मांस और पीने की चीजों को सोहू नहीं कह सकता। और इसी बात को आजकल के ईसाई लोग प्रभु भोजन कहते हैं अर्थात् खाने पीने की चीजों में ईसा के मांस और लोहू की भावना कर खाते पीते हैं। यह कितनी बुरी बात है ? जिन्होंने अपने गुरु के मांस लोहू को भी खाने पीने की भावना से न छोड़ा तो और को कैसे

छोड़ सकते हैं ?

92. यह क्या बढ़ई नहीं है।

(समीक्षक) असल में यूसफ बढ़ई था, इसलिये ईसा भी बढ़ई था। कितने ही वर्ष तक बढ़ई का काम करता था। पश्चात् पैगम्बर बनता बनता ईश्वर का बेटा ही बन गया और जंगली लोगों ने बना लिया तभी बड़ी कारीगरी चलाई। काट कूट फूट फाट करना उनका काम है।

93. यीशु ने उससे कहा तू मुझे उत्तम क्यों कहता है, कोई उत्तम नहीं है, केवल एक अर्थात ईश्वर।

(समीक्षक) जब ईसा ही एक अद्वितीय ईश्वर कहाता है तो ईसाइयों ने पवित्रात्मा पिता और पुत्र तीन कहाँ से बना लिये ?

106. और जैसे बड़ी बयार से हिलाए जाने पर गूलर के वृक्ष से उसके कच्चे गूलर झढ़ते हैं वैसे आकाश के तारे पृथिवी पर गिर पड़े। और आकाश पत्र की नाई जो लपेटा जाता है अलग हो गया।

(समीक्षक) अब देखिये ! योहन भविष्यद्वक्ता ने जब विद्या नहीं है तभी तो ऐसी अण्ड बण्ड कथा गाई। भला ! तारे सब भूगोल हैं एक पृथिवी पर कैसे गिर सकते हैं? और सूर्यादि का आकर्षण उनको इधर-उधर क्यों आने जाने देगा ? और क्या आकाश को चटाई के समान समझता है? यह आकाश साकार पदार्थ नहीं है जिस को कोई लपेटे या इकट्ठा कर सके। इसलिये योहन आदि सब जङ्गली मनुष्य थे। उनको इन बातों को क्या खबर?

125. और ईश्वर ने उसके कुकर्मों को स्मरण किया है। जैसा उसने तुम्हें दिया है तैसा उसको भर देओ और उसके कर्मों के अनुसार दूना उसे दे देओ।

(समीक्षक) देखो! प्रत्यक्ष ईसाइयों का ईश्वर अन्यायकारी है। क्योकि न्याय उसी को कहते हैं कि जिसने जैसा वा जितना कर्म किया उसको वैसा और उतना ही फल देना। उससे अधिक न्यून देना अन्याय है। जो अन्यायकारी की उपासना करते है वे अन्यायकारी क्यों न हों।

133. देख ! मैं शीघ्र आता हूँ और मेरा प्रतिफल मेरे साथ है जिसतें हर एक को जैसा उसका कार्य ठहरेगा वैसा फल देऊंगा।

(समीक्षक) जब यही बात है कि कर्मानुसार फल पाते हैं तो पापों की क्षमा कभी नहीं होती और जो क्षमा होती है तो इञ्जील की बातें झूठी।

★★★★★

चौदहवां समुल्लास

मुस्लिम मत समीक्षा

2. सब स्तुति परमेश्वर के वास्ते है जो परवरदिगार अर्थात् पालन करने हारा है, सब संसार का क्षमा करने वाला दयालु है।

(समीक्षक) जो कुरान का खुदा संसार का पालन करने हारा होता और सब पर क्षमा और दया करता होता तो अन्य मत वाले और पशु आदि को भी मुसलमानों के हाथ से मरवाने का हुक्म न देता। जो क्षमा करनेहारा है तो क्या पापियों पर भी क्षमा करेगा ? और जो वैसा है तो आगे लिखेंगे कि ''काफिरों को कतल करो'' अर्थात् जो कुरान और पैगम्बर को न माने वे काफिर हैं ऐसा क्यों कहता ? इसलिये कुरान ईश्वरकृत नहीं दीखता।

6. उनके दिलों में रोग है, अल्लाह ने उनका रोग बढ़ा दिया।

(समीक्षक) भला बिना अपराध खुदा ने उनका रोग बढ़ाया, दया न आई, उन विचारों को बड़ा दुःख हुआ होगा! क्या यह शैतान से बढ़ कर शैतानपन का काम नहीं है ? किसी के मन पर मोहर लगाना, किसी को रोग बढ़ाना, यह खुदा का काम नहीं हो सकता क्योंकि रोग का बढ़ना अपने पापों से है।

7. जिसने तुम्हारे वास्ते पृथिवी विछौना और आसमान की छत को बनाया।

(समीक्षक) भला आसमान छत किसी की हो सकती है? यह अविद्या की बात है। आकाश को छत के समान मानना हंसी की बात है। यदि किसी प्रकार की पृथिवी को आसमान मानते हों तो उनकी घर की बात है।

11. जब हमने फरिश्तों से कहा कि बाबा आदम को दण्डवत् करो, देखा सभों ने दण्डवत् किया परन्तु शैतान ने न माना और अभिमान किया क्योंकि वो भी काफ़िर था।

(समीक्षक) इससे खुदा सर्वज्ञ नहीं अर्थात् भूत, भविष्यत् और वर्तमान की पूरी बातें नहीं जानता। जो जानता हो तो शैतान को पैदा ही क्यों किया? और खुदा में कुछ तेज भी नहीं है क्योंकि शैतान ने खुदा का हुक्म ही न माना और खुदा उसका कुछ भी न कर सका।

15. और कहो कि क्षमा मांगते हैं हम क्षमा करेंगे तुम्हारे पाप और

अधिक भलाई करने वालों के।

(समीक्षक) भला यह खुदा का उपदेश सब को पापी बनाने वाला है वा नहीं ? क्योंकि जब पाप क्षमा होने का आश्रय मनुष्यों को मिलता है तब पापों से कोई भी नहीं डरता। इसलिये ऐसा कहने वाला खुदा और यह खुदा का बनाया हुआ पुस्तक नहीं हो सकता क्योंकि वह न्यायकारी है, अन्याय कभी नहीं करता और पाप क्षमा करने में अन्यायकारी हो जाता है किन्तु यथापराध दण्ड ही देने में न्यायकारी हो सकता है।

16. जब मूसा ने अपनी कौम के लिये पानी मांगा, हमने कहा कि अपना असा (दंड) पत्थर पर मार। उसमें से बारह चश्मे बह निकले।

(समीक्षक) अब देखिये ! इन असंभव बातों के तुल्य दूसरा कोई कहेगा ? एक पत्थर की शिला में डंडा मारने से बारह झरनों का निकलना सर्वथा असम्भव है।

25. और अल्लाह खास करता है जिसको चाहता है साथ दया अपनी के।

(समीक्षक) क्या जो मुख्य और दया करने के योग्य न हो उसको भी प्रधान बनाता और उस पर दया करता है? जो ऐसा है तो खुदा बड़ा गड़बड़िया है क्योंकि फिर अच्छा काम कौन करेगा? और बुरे कर्म को कौन छोड़ेगा ? क्योंकि खुदा की प्रसन्नता पर निर्भर करते हैं, कर्मफल पर नहीं, इससे सबको अनास्था होकर कर्मोच्छेदप्रसङ्ग होगा।

28. जो आसमान और भूमि का उत्पन्न करने वाला है जब वो कुछ करना चाहता है यह नहीं कि उसको करना पड़ता है किन्तु उसे कहता है कि हो जा, बस हो जाता है।

(समीक्षक) भला खुदा ने हुक्म दिया कि होजा तो हुक्म किसने सुना? और किसको सुनाया? और कौन बन गया ? किस कारण से बनाया ? जब यह लिखते हैं कि सृष्टि के पूर्व सिवाय खुदा के कोई भी दूसरा वस्तु न था तो यह संसार कहां से आया ? बिना कारण के कोई भी कार्य नहीं होता तो इतना बड़ा जगत् कारण के बिना कहां से हुआ ? यह बात केवल लड़कपन की है।

34. तुम पर मुर्दार, लोहू और गोश्त सूअर का हराम है और अल्लाह के बिना जिस पर कुछ पुकारा जावे।

(समीक्षक) यहां विचारना चाहिये कि मुर्दा चाहे आप से आप मरे वा किसी के मारने से दोनों बराबर हैं। हां! इनमें कुछ भेद भी है तथापि मृतकपन

में कुछ भेद नहीं। और जब एक सूअर का निषेध किया तो क्या मनुष्य का मांस खाना उचित है ? क्या यह बात अच्छी हो सकती है कि परमेश्वर के नाम पर शत्रु आदि को अत्यन्त दुःख देके प्राणहत्या करनी ?

45. जिस को चाहे नीति देता है।

(समीक्षक) जब जिसको चाहता है उसको नीति देता है तो जिसको नहीं चाहता है उसको अनीति देता होगा। यह बात ईश्वरता की नहीं किन्तु जो पक्षपात छोड़ सब को नीति का उपदेश करता है वही ईश्वर और आप्त हो सकता है, अन्य नहीं।

46. जो लोग व्याज खाते हैं वे कबरों से नहीं खड़े होंगे।

(समीक्षक) क्या वे कबरों ही में पड़े रहेंगे ? और जो पड़े रहेंगे तो कब तक ? ऐसी असम्भव बात ईश्वर के पुस्तक की तो नहीं हो सकती है किन्तु बालबुद्धियों की तो हो सकती है।

47. वह कि जिसको चाहेगा क्षमा करेगा जिसको चाहे दण्ड देगा क्योंकि वह सब वस्तु पर बलवान है।

(समीक्षक) क्या क्षमा के योग्य पर क्षमा न करना, अयोग्य पर क्षमा करना गवरगंड राजा के तुल्य यह कर्म नहीं है? यदि ईश्वर जिसको चाहता पापी वा पुण्यात्मा बनाता है तो जीव को पाप-पुण्य न लगना चाहिये और जब ईश्वर ने उसको वैसा ही किया तो जीव को दुःख-सुख भी होना न चाहिये। जैसे सेनापति की आज्ञा से किसी भृत्य ने किसी को मारा वा रक्षा की उसका फलभागी वह नहीं होता वैसे वे भी नहीं।

49. निश्चय अल्लाह की ओर से दीन इसलाम है।

(समीक्षक) क्या अल्लाह मुसलमानों ही का है औरों का नहीं ? क्या तेरह सौ वर्षों के पूर्व ईश्वरीय मत था ही नहीं ? इसी से यह कुरान ईश्वर का बनाया तो नहीं किन्तु किसी पक्षपाती का बनाया है।

61. और शिक्षा प्रकट होने के पीछे जिसने रसूल से विरोध किया और मुसलमानों से विरुद्ध पक्ष किया अवश्य हम उनको दोजख में भेजेंगे।

(समीक्षक) अब देखिये खुदा और रसूल की पक्षपात की बातें। मुहम्मद साहब आदि समझते थे कि जो खुदा के नाम से ऐसी हम न लिखेंगे तो अपना मजहब न बढ़ेगा और पदार्थ न मिलेंगे, आनन्द भोग न होगा। इसी से विदित होता है कि वे अपने मतलब करने में पूरे थे और अन्य के प्रयोजन विगाड़ने में। इससे ये अनाप्त थे। इनकी बात का प्रमाण आप्त विद्वानों के

सामने कभी नहीं हो सकता।

63. निश्चय अल्लाह बुरे लोगों को और काफिरों को जमा करेगा दोजख में। निश्चय बुरे लोग धोखा देते हैं अल्लाह को और उनको वह धोखा देता है। ऐ ईमान वालो ! मुसलमानों को छोड़ काफिरों को मित्र मत बनाओ।

(समीक्षक) मुसलमानों के बहिश्त और अन्य लोगों के दोज़ख में जाने का क्या प्रमाण ? वाह जी वाह ! जो बुरे लोगों के धोखे में आता और अन्य को धोखा देता है ऐसा खुदा हमसे अलग रहे। किन्तु जो धोखेबाज हैं उन से जाकर मेल करे और वे उस से मेल करें। क्योंकि जैसे को तैसा मिले तभी निर्वाह होता है। जिसका खुदा धोखेबाज है उसके उपासक लोग धोखेबाज क्यों न हों? क्या दुष्ट मुसलमान हो उससे मित्रता और अन्य श्रेष्ठ मुसलमान भिन्न से शत्रुता करना किसी को उचित हो सकती है ?

66. और अल्लाह को अच्छा उधार दो अवश्य मैं तुम्हारी बुराई दूर करूंगा और तुम्हें बहिश्तों में भेजूंगा।

(समोक्षक) वाह जी ! मुसलमानों के खुदा के घर में कुछ धन विशेष नहीं रहा होगा। जो विशेष होता तो उधार क्यों मांगता ? और उनको क्यों बहकाता कि तुम्हारी बुराई छुड़ा के तुमको स्वर्ग में भेजूँगा? यहां विदित होता है कि खुदा के नाम से मुहम्मद साहब ने अपना मतलब साधा है।

67. जिसको चाहता है क्षमा करता है जिसको चाहे दुःख देता है। जो कुछ किसी को भी न दिया वह तुम्हें दिया ।

(समीक्षक) जैसे शैतान जिसको चाहता पापी बनाता वैसे ही मुसलमानों का खुदा भी शैतान का काम करता है? जो ऐसा है तो फिर बहिश्त और दोजख में खुदा जावे क्योंकि वह पाप पुण्य करने वाला हुआ, जीव पराधीन हैं। जैसी सेना सेनापति के आधीन रक्षा करती और किसी को मारती है, उसकी भलाई बुराई सेनापति को होती है, सेना पर नहीं।

69. अल्लाह ने माफ किया जो हो चुका और जो कोई फिर करेगा अल्लाह उससे बदला लेगा।

(समीक्षक) किये हुए पापों का क्षमा करना जानो पापों को करने की आज्ञा देके बढ़ाना है। पाप क्षमा करने की बात जिस पुस्तक में हो वह न ईश्वर और न किसी विद्वान् का बनाया है, किन्तु पापवर्द्धक है। हां ! आगामी पाप छुड़वाने के लिये किसी से प्रार्थना और स्वयं छोड़ने के लिये पुरुषार्थं पश्चात्ताप करना उचित है परन्तु केवल पश्चात्ताप करता रहे, छोड़े नहीं, तो

भी कुछ नहीं हो सकता।

73. मत फिरो पृथिवी पर झगड़ा करते।

(समीक्षक) यह बात तो अच्छी है परन्तु इससे विपरीत दूसरे स्थानों में जिहाद करना, काफिरों को मारना भी लिखा है। अब कहो यह पूर्वापर विरुद्ध नहीं है ? इससे यह विदित होता है कि जब मुहम्मद साहब निर्बल हुए होंगे तब उन्होंने यह उपाय रचा होगा और जब सबल हुए होंगे तब झगड़ा मचाया होगा। इसी से ये बातें परस्पर विरुद्ध होने से दोनों सत्य नहीं हैं।

79. और काटे जड़ काफिरों की। मैं तुमको सहाय दूंगा। साथ सहस्र फरिश्तों के पीछे पीछे आने वाले। अवश्य मैं काफिरों के दिलों में भय डालूंगा। बस मारो ऊपर गर्दनों के, मारो उनमें से प्रत्येक पोरी (संधि) पर।

(समीक्षक) वाह जी वाह ! कैसा खुदा और कैसे पैगम्बर दयाहीन। जो मुसलमानी मत से भिन्न काफिरों की जड़ कटवावे। और खुदा आज्ञा देवे उनको गर्दन मारो और हाथ पग के जोड़ों को काटने का सहाय और सम्मति देवे। ऐसा खुदा लंकेश से क्या कुछ कम है ? यह सब प्रपंच कुरान के कर्तृता का है, खुदा का नहीं। यदि खुदा का हो तो ऐसा खुदा हम से दूर और हम उससे दूर रहें ।

97. कह निश्चय अल्लाह गुमराह करता है जिसको चाहता है और मार्ग दिखलाता है। तर्फ अपनी उस मनुष्य को रुजू करता है।

(समीक्षक) जब अल्लाह गुमराह करता है तो खुदा और शैतान में क्या भेद हुआ ? जब कि शैतान दूसरों को गुमराह अर्थात बहकाने से बुरा कहाता है तो खुदा भी वैसा ही काम करने से बुरा शैतान क्यों नहीं ? और बहकाने के पाप से दोजखी क्यों नहीं होना चाहिये ?

102. और नियत करते हैं वास्ते अल्लाह के बेटियां - पवित्रता है उसको - और वास्ते उनके हैं जो कुछ चाहें। कसम अल्लाह की अवश्य भेजे हमने पैगम्बर।

(समीक्षक) अल्लाह बेटियों से क्या करेगा? बेटियां तो किसी मनुष्य को चाहिये, क्यों बेटे नियत नहीं किये जाते और बेटियां नियत की जाती हैं ? इसका क्या कारण है ? बताइये ? कसम खाना झूठों का काम है, खुदा की बात नहीं। क्योंकि बहुधा संसार में ऐसा देखने में आता है कि जो झूठा होता है वही कसम खाता है। सच्चा सौगन्ध क्यों खावे ?

110. क्या नहीं देखा तू ने यह कि भेजा हमने शैतानों को ऊपर

काफिरों के बहकाते हैं उनको बहकाने कर।

(समीक्षक) जब खुदा ही शैतानों को बहकाने के लिये भेजता है तो बहकने वालों का कुछ दोष नहीं हो सकता और न उनको दण्ड हो सकता और न शैतानों को। क्योंकि यह खुदा के हुक्म से सब होता है। इसका फल खुदा को होना चाहिये। जो सच्चा न्यायकारी है तो उसका फल दोजख आप ही भोगे और जो न्याय को छोड के अन्याय को करे तो अन्यायकारी हुआ। अन्यायकारी ही पापी कहाता।

112. और किये हमने बीच पृथिवी के पहाड़ ऐसा न हो कि हिल जावे।

(समीक्षक) यदि कुरान का बनाने वाला पृथिवी का घूमना आदि जानता तो यह बात कभी नहीं कहता कि पहाड़ों के धरने से पृथिवी नहीं हिलती। शंका हुई कि जो पहाड़ नहीं धरता तो हिल जाती ! इतने कहने पर भी भूकम्प में क्यों डिग जाती है ?

115. फिर निश्चय तुम दिन कयामत के उठाये जाओगे ।

(समीक्षक) कयामत तक मुर्दे कबरों में रहेंगे वा किसी अन्य जगह ? जो उन्हीं में रहेंगे तो सड़े हुए दुर्गन्धरूप शरीर में रहकर पुण्यात्मा भी दुःख भोग करेंगे ? यह न्याय अन्याय है। और दुर्गन्ध अधिक होकर रोगोत्पत्ति करने से खुदा और मुसलमान पापभागी होंगे। 136. अल्लाह क्षमा करता है पाप सारे, निश्चय वह है क्षमा करने वाला दयालु।

(समीक्षक) यदि समग्र पापों को खुदा क्षमा करता है तो जानो सब संसार को पापी बनाता है और दयाहीन है। क्योंकि एक दुष्ट पर दया और क्षमा करने से वह अधिक दुष्टता करेगा और अन्य बहुत धर्मात्माओं को दुःख पहुँचावेगा ।

144. निश्चय अल्लाह मित्र रखता है उन लोगों को कि लड़ते हैं बीच मार्ग उसके के।

(समीक्षक) वाह ठीक है ! ऐसी-ऐसी बातों का उपदेश करके विचारे अर्ब देशवासियों को सब से लड़ा के शत्रु बनाकर परस्पर दुःख दिलाया और मजहब का झंडा खड़ा करके लड़ाई फैलावे ऐसे को कोई बुद्धिमान् ईश्वर कभी नहीं मान सकते। जो मनुष्य जाति में विरोध बढ़ावे वहीं सब को दुःख दाता होता है।

146. ऐ नबी झगड़ा कर काफिरों और गुप्त शत्रुओं से और सख्ती

कर ऊपर उन के।

(समीक्षक) देखिये मुसलमानों के खुदा की लीला ! अन्य मत वालों से लड़ने के लिये पैगम्बर और मुसलमानों को उसकाता है। इसी लिये मुसलमान लोग उपद्रव करने में प्रवृत्त रहते हैं। परमात्मा मुसलमानों पर कृपादृष्टि करे जिससे ये लोग उपद्रव करना छोड़ के सब से मित्रता से वर्तें।

151. इकट्ठा किया जावेगा सूर्य और चांद।

(समीक्षक) भला सूर्य्य चांद कभी इकट्ठे हो सकते हैं ? देखिये ! यह कितनी बेसमझ की बात है। और सूर्य चन्द्र ही के इकट्ठे करने में क्या प्रयोजन था ? अन्य सब लोकों को इकट्ठे न करने में क्या युक्ति है ? ऐसी-ऐसी असम्भव बातें परमेश्वरकृत कभी हो सकती हैं ? बिना अविद्वानों के अन्य किसी विद्वान् की भी नहीं होती।

154. जब कि सूर्य लपेटा जावे। और जब कि तारे गदले हो जायें। और जब कि पहाड़ चलाये जावें। और जब आसमान की खाल उतारी जावे।

(समीक्षक) यह बड़ी समझ की बात है कि गोल सूर्यलोक लपेटा जावेगा ? और तारे गदले क्योंकर हो सकेंगे? और पहाड़ जड़ होने से कैसे चलेंगे? और आकाश को क्या पशु समझा कि उस की खाल निकाली जावेगी ? यह बड़ी ही बेसमझ और जंगलीपन की बात है।

155. और जब कि आसमान फट जावे, और जब तारे झड़ जावें, और जब दर्या चीरे जावें। और जब कबर जिला कर उठाई जावें।

(समीक्षक) वाह जी कुरान के बनाने वाले फिलासफर ! आकाश को क्योंकर फाड़ सकेगा? और तारों को कैसे झाड़ सकेगा ? और दर्या क्या लकड़ी है जो चीर डालेगा? और कबरें क्या मुरदे हैं जो जिला सकेगा ? ये सब बातें लड़कों के सदृश हैं।

157. निश्चय वे मकर करते हैं एक मकर। और मैं मी मकर करता हूँ एक मकर।

(समीक्षक) मकर कहते हैं ठगपन को, क्या खुदा भी ठग है? और क्या चोरी का जवाब चोरी और झूठ का जवाव झूठ है ? क्या कोई चोर भले आदमी के घर में चोरी करे तो क्या भले आदमी को चाहिए कि उस के घर में जा के चोरी करे ! वाह ! वाह जी !! कुरान के बनाने वाले।

★★★★★

लेखक का परिचय

लेखक कृष्ण चंद्र गर्ग ने पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ से गणित में बी.ए. आनर्ज और एम.ए. किया। फिर डी.ए.वी. कॉलेज अबोहर, दयानन्द कॉलेज हिसार तथा मोदी डिग्री कॉलेज पटियाला में गणित के प्रोफेसर के तौर पर काम किया। फिर अमेरिका जाकर कुछ पढ़ाई की और कुछ समय सिटी कॉलेज शिकागो में तथा गवर्नर स्टेट यूनिवर्सिटी में गणित पढ़ाया। वे कुल 13 वर्ष तक अमेरिका में रहे। अब वे पंचकूला, हरियाणा में रह रहे हैं।

लेखक की अन्य कृतियां -

आर्य मान्यताएं - यह पुस्तक 96 पृष्ठ की है। इसे आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली वाले छाप रहे हैं। आर्य जगत में यह पुस्तक काफी प्रसिद्धि पा चुकी है। अब तक इसकी एक लाख तीस हजार से अधिक प्रतियां बिक चुकी हैं। इसमें आर्यों की बहुत सी मान्याताओं का संक्षेप में तथा सरल भाषा में वर्णन किया गया है।

सत्य की खोज - इस पुस्तक में 128 पृष्ठ हैं। यह पुस्तक 25 लेखों का संग्रह है। इसे सूर्य भारती प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली वालों ने प्रकाशित किया है। इसमें भारत में प्रचलित बहुत सी ऐसी गलत मान्यताओं को सरल और स्पष्ट भाषा में सप्रमाण दर्शाया गया है जो भारत को विनाश की ओर ले जाने के लिए जिम्मेदार हैं। सभी राष्ट्रभक्तों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

वैदिक ज्ञान माला - यह 88 पृष्ठ की पुस्तक है। इसे आर्य समाज, सैक्टर-9, पंचकूला ने प्रकाशित किया है। इस पुस्तक में ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद से चुने हुए कुछ मंत्रों को अर्थ सहित, ग्यारह उपनिष्दों के महत्त्वपूर्ण उपदेश, मनुस्मृति से चुने हुए श्लोक अर्थ सहित, छे दर्शनों के कुछ विचार, वाल्मीकि रामायण से कुछ बातें तथा कुछ सामान्य ज्ञान की बातें दी गई हैं। वैदिक साहित्य का परिचय तथा उसका कुछ-कुछ ज्ञान इस पुस्तक को पढ़ने से होगा।